कमलेश्वर का नवीनतम उपन्यास 'सुबह···दोपहर···शाम' स्वातन्त्र्य पूर्व की तनावपूर्ण स्थितियों का सजीव वर्णन प्रस्तुत करता है।

उपन्यास की कथा अंग्रेजी राज में भारतीय जनमानस में व्याप्त राष्ट्रीयता की भावना, स्वतन्त्रता-प्राप्ति में क्रान्तिकारियों की भूमिका और तत्कालीन परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब तो है ही, ग्रामीण व्यवस्था, गांवों में फैले संस्कारों की मार्मिक प्रस्तुति भी है।

कमलेश्वर हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ उपन्यासकार हैं। उनके कई उपन्यासों को आधार बनाकर फिल्में भी बन चुकी हैं। उनकी कलम का जादू इस उपन्यास में भी पूरी तरह दिखाई देता है। यह उपन्यास 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित होकर बहुचर्चित हो चुका है।

सुबह…दोपहर…शाम

कमलेश्वर

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

बस्ती वालों को आंधियों की याद तो थी, रेलगाडी की पहचान तक नहीं थी। उनकी समझ में नहीं आता था कि यह रेलगाडी कैसी होगी और कैसे चलेगी! बैल तो बैलगाड़ी को चला सकते हैं, पर कोसला-पानी में गाड़ी कैसे चलेगी!

बड़ी दादी बहुत परेशान थीं— खेतों में गेहूं की फसल पकी खड़ी थी, कटाई होने वाली थी और जसवन्त कह रहा था—मुझे जाना था। बड़ी दादी ने जाता रोककर अपने हाथ झाड़े, लहंगे का घेर मोर के नाचते परों की तरह फैलाया, फिर उसे समेटा और आकर आंगन में खड़ी हो गईं।

उन्होंने आंगन में मुंडेरों की तरफ देखा—जहां घास पककर सोने के तारों की तरह झिलमिला रही थी···फिर मुंडेर के पार आसमान की तरफ देखा···

बड़ी दादी फौरन सब-कुछ समझ जाती थीं। वह घर के लोगों से तो बात करती ही थीं, चिड़ियों, मोर और सांप से भी बात कर लिया करती थीं। सोने के तारों की तरह झिलमिलाती घास के इशारे भी समझ लेती थीं और हवा की आवाज़ से प्रकृति के इरादे भी मालूम कर लेती थीं।

यही तो बड़ी बात थी—बड़ी दादी में। उनकी दुनिया बहुत बड़ी थी। एक बार बरसात की रात थी—धारासार पानी बरस रहा था। मुंडेरों और छतों की मिट्टी कट-कट कर परनालों से गिर रही थी। पनेल के छप्पर पर रिम-झिम करता पानी गिर रहा था। चारों तरफ घोर अंधियारा था—आठ कमरों के घर में जगह-जगह तेल-बाती की कुप्पियां

जल रही थीं। बाहर का बड़ा दरवाज़ा खुला पड़ा था। कुन्दन कुप्पी लेकर दरवाज़ा बन्द करने गया तो चौखट और दरवाज़े की किनारी जहां चूल में फंसती थी—वहां से एकदम तेज़ फुफंकार की आवाज़ आई थी। कुन्दन डर कर पलटा था। चीखता हुआ—सांप ! सांप ! और लाठी लेकर लौटने लगा था तो बड़ी दादी ने रोक लिया था।

—कहां है सांप ?

—वहां। दरवाज़े की चौखट में फंसा हुआ है।

—चल, मैं देखती हूं। लाठी उधर रख, कुप्पी मुझे दे।

हाथ में कुप्पी लेकर, अपने भीगे बालों को संवारती बड़ी दादी बाहर वाले दरवाज़े की तरफ चलीं तो घर के सभी लोग पीछे जुड़ गए थे।

—कहां हैं सर्पदेवता ?

—वहां···चौखट में। कुन्दन ने डरते हुए दूर से कहा था। तभी अंधेरी चौखट की मुर्दा लकड़ी में से एक ज़हरबुझी फुफकार आई थी।

बड़ी दादी हाथ की कुप्पी ऊंची करके उधर बढ़ गई थीं। कुप्पी की लौ में उन्होंने देखा था—सांप सचमुच फंस गया था। चूल के कड़े में उसका आधा हिस्सा लिपटा रह गया था और वह बहुत गुस्से में आपा खोकर फुफकार रहा था।

बड़ी दादी ने पास पड़े पुआल के ढेरों को खिसका कर ऊपर खड़े होने की जगह बना ली थी और उन्होंने उस सांप को गौर से देखा था, सांप ने उन्हें। बड़ी दादी ने धीरे-से पुचकारा था। सांप ने फुफकारा था।

—तुम्हारे चोट लग गई !

सांप ने फिर कुछ कहा था।

—बहुत दुःख रहा है ! बड़ी दादी ने पूछा था। सांप ने फुफकार कर फिर कुछ बोला।

बड़ी दादी ने दरवाज़े को धीरे-धीरे खोला था—सांप के सरकने की चिकनी आवाज़ आई थी और एक पल में सांप सरककर दरवाज़े के बाहर हो गया।

—इतने पानी में कहां चले गए···यहीं रुक जाते। कहते हुए बड़ी दादी कुन्दन को कुप्पी थमाकर पलटी थीं—दरवाज़ा बन्द कर दे।

घर के सभी लोग आये सकते में थे।

धारासार पानी बरसता रहा था।

बड़ी दादी की फतोई में से आती गुड़-जैसी महक को सूंघते हुए छोटी मुनिया ने लेटे-लेटे उनसे और चिपकते हुए पूछा था—बड़ी दादी !

—हूं !

—सांप क्या बोला था ?

—कहता था, बहुत दु.ख रहा है।···

ऐसी कितनी रातें, कितने दिन बीत गए—बड़ी-बड़ी रातें—बड़े-बड़े दिन। उसी तरह जाड़ा, गर्मी, बरसात आती रही। उसी तरह खेतों मे फसलें उगती रहो। पिछवाड़े कैथे और बेल पकते रहे। हर मौसम में मुंडेरो पर मोर नाचने आते रहे और छोटी मुनिया हमेशा कहती रही—मोर बड़ी दादी के लिए नाचने आते हैं !

—नहीं बेटा ! मोर सबके लिए नाचने आते हैं ! बड़ी दादी कहती थी।



बड़ी दादी ने एक बार फिर अपना लहंगा मोर के नाचते पैरों की तरह फैलाकर समेटा और आंगन में खड़े-खड़े आसमान से निगाहें हटाकर जसवन्त से कहा—

—आज सगुन अच्छा नहीं। पता नहीं तुम्हें, कैसे दिन हैं ? मोर जंगलों में लौट गए हैं···जरते-बरते दिन आ गए हैं। ऐसे में तू अंग्रेज बहादुर की गाड़ी चलाने जाएगा ?

—बड़ी अम्मा ! दो रुपया महीना मिलेगा। तुमने अभी गाडी देखी नहीं—आंधी की तरह आती है। जसवन्त ने कहा।

—मैंने आकाश देखा है, देख, जरा आकाश का रंग। तेरी गाड़ी जब आएगी, तब आएगी···अभी तो पीली आंधी आ रही है। जगत से कहो, कटाई करने नही जाएगा, नहीं तो खेत का अन्न सब उड़ जाएगा।

तू भी अंग्रेज बहादुर की गाड़ी चलाने नहीं जाएगा···बड़ी दादी ने बोला, फिर आवाज़ लगाई—बड़की बहू! जोर की आंधी आ रही है। आंगन में बड़नी सिल-बट्टे से दबा दे!

सबने आसमान की तरफ देखा—आंधी के कोई आसार नहीं थे। आसमान में चिड़ियों के झुण्ड और चीलों के एकाध बच्चे चक्कर लगा रहे थे।

—बड़ी अम्मा! आंधी तो कहीं नहीं आ रही है! जसवन्त ने कहा तो बड़ी दादी ने आसमान में उड़ते पंछियों की तरफ इशारा करके बताया—

—इनके परों को देख। कैसे थरथरा रहे हैं। सारे पंछी पश्चिम की तरफ जा रहे हैं। उधर से ही आंधी आ रही है।

तभी आसमान पीला पड़ने लगा—हवा के झकोरे मुंडेरों की घास से टकरा-टकरा कर गुज़रने लगे—चारों तरफ—पूरी बस्ती में हवा की सनसनाहट व्याप गई। धीरे-धीरे हवा की आवाज़ चाबुक की तरह छतों और छप्परों पर पड़ने लगी और पूरा आसमान मटमैली, पीली मिट्टी से भर गया—जैसे मीलों दूर कोई ज्वालामुखी फूटा हो और उसकी जलती पीली रेत के मटमैले बगूले आसमान में उठते चले गए हों।

अब घर में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं रह गई थी कि जो बड़ी दादी कहती थीं—वह फौरन होता हुआ दिखाई पड़ने लगा था।

जसवन्त और बहुओं ने पीली आंधी की रेत से बचने के लिए जल्दी-जल्दी खिड़कियां और दरवाज़े बन्द कर लिए। भीतर कमरों में अजीब-सा पीला अंधेरा छा गया था। आंधी के सनसनाते थपेड़े खिड़कियों के पल्लों और ढीली कुण्डी वाले दरवाज़ों पर लगातार पड़ रहे थे। हवा घूम-घूमकर, नाच रही थी—बड़े घर की कच्ची मिट्टी की कार्निसों में कबूतर आकर दुबक गए थे—मीलों दूर की सूखी पत्तियां और तिनके दीवारों पर झाड़-से लगाते नीचे गिर रहे थे—जैसे पंख-जले पतंगे गिर पड़ते हैं। दीवार की किनारियों और दरवाज़ों की संधों से पीली रेत की धुएं-जैसी बारिश जारी थी। संधों से झांकते बच्चों की आंखों में रेत भर गई थी—वे आंखें मल रहे थे।

बड़ी दादी छुटकू को गोद में बैठा कर अपनी ओढ़नी का फाया बनाते हुए मुंह की भाप से उसे गरमा कर उसकी आंखों को सेंकते हुए जसवन्त से बोली थीं—

—तुम्हारा जाना जरूरी है जसवन्त ?

—हां, बड़ी अम्मा !

—अंग्रेज बहादुर की नौकरी जरूरी है ?

—वह तो नहीं है, बड़ी अम्मा ···लेकिन···

—दो रुपये महीना मिलेगा, इसलिए जा रहा है ?

—वह भी बात नहीं है बड़ी अम्मा !

—तब क्यों अंग्रेज बहादुर की गुलामी करने जा रहा है ? तुझे भी क्या अपनी बुआ-फूफाजी की गद्दारी अच्छी लगने लगी है ?

जसवन्त ने यह सुना तो सन्नाटे में आ गया। उसने कभी नहीं सोचा था कि बड़ी अम्मा इतना सोचती होंगी—उसे तो हमेशा यही लगा कि बड़ी अम्मा अपनी गृहस्थी, बहुओं, नाती-पोतों में डूबी हुई हैं। घर की दीवारों, चौके और घरेलू बातों में घिरी हुई हैं—वह कभी भी अंग्रेजों और उनकी हुकूमत के बारे में सोचती होंगी—या बुआ-फूफाजी के घराने के बारे में ऐसे विचार रखती होंगी। उनके मुंह से बुआ, फूफाजी के घर को 'गद्दार' सुनकर वह सोच ही नहीं पा रहा था कि उनसे क्या कहे या क्या जवाब दे ? या फिर अपने बारे में वह बड़ी अम्मा को क्या सफाई दे ? उन्हें कैसे बताए कि वह अंग्रेजों के लिए देश से गद्दारी करने नहीं जा रहा है, वह सिर्फ रेलगाड़ी के महकमे में काम करने जा रहा है—यह महकमा ऐसा है, जिससे नई जिन्दगी देश में आएगी···रेलें चलेंगी तो देश एकता के सूत्र में जुड़ जाएगा। अपने गांव का आदमी दूसरे गांव तक पहुंचा करेगा—दूसरे गांव का वासी अपने गांव तक आ सकेगा।

जसवन्त ने बड़ी दादी के मुंह की तरफ देखा—तो और भी सहम गया—उनके चेहरे पर अजीब-सा कड़वापन छाया हुआ था। मुंह में जैसे कसैला स्वाद हो। उसकी हिम्मत नहीं पड़ी कि वह उनसे आंख मिला सके, या बिना आंख मिलाए अपनी सफाई दे सके। उसका गला सूखने लगा। उसने कुछ कहने की कोशिश की भी तो हकला कर रह

I…वड़ी दादी ने उसका यह हाल देखा तो खुद ही बोल पड़ीं…

—क्यों, क्या हुआ ? मुंह पर ताला क्यों पड़ गया ? क्या अपना र, अपनी धरती तुझे कम पड़ती है जो रेलगाड़ी के महकमे में जा हा है ?

—वह बात नहीं है,वड़ी अम्मा…

—तो क्या बात है ?

—खेती संभालने वाले बहुत हाथ हैं घर में…

—तुझे रोटी की कमी पड़ती है क्या ?

—नहीं !

—तो फिर अंग्रेज वहादुर की गुलामी करने काहे जा रहा है—क्या उनकी रोटी में ज्यादा गुड़ लगा है…

—वह बात नहीं है वड़ी अम्मा !

—देख जसवन्त ! रोटी तो कुत्ता भी खाता है, जो टुकड़ा फेंक दो, उसे ही खा लेता है, पर मानुष रोटी-रोटी में भेद करता है…तू रोटी का भेद भूल गया है…जैसे तेरी बुआ भूल गई है। तेरी बुआ इसी पेट की जाई है… पर मेरी कोख उसे जनम देकर चौदह वरस बाद काली पड़ गई। वह अपने आदमी के साथ अंग्रेज बहादुर की रोटी तोड़ने लगी… उसकी तड़क-भड़क, हवेली, पैसा, तलवार— तुझे ज्यादा सुहाने लगीं ? तौर छोड़, मुझे कुछ नहीं कहना है, जो जी में आए कर जाके…आंधी बीत जाए, आसमान खुल जाए…तू चला जा…

जसवन्त सिर लटकाकर रह गया। वाहर तो आंधी थी ही, उसकी किसकिसाहट आंखों, कानों और दांतों में मौजूद ही थी, पर वड़ी अम्मा की जहर-बुझी बातों ने उसके मन में भी एक टीसती किसकिसाहट पैदा कर दी थी।

जसवन्त को वड़ी अम्मा का दुख मालूम था। बड़े बाबा राजा साहब के सिपहसालार थे। 1857 में जब आजादी का संग्राम छिड़ा था तो बड़े बाबा राजा साहब के साथ, खुद घोड़े पर और जान हथेली पर लेकर

उनकी रक्षा करते साथ-साथ चले थे। चार घुड़सवार और थे।

राजा साहब को भागना पड़ा था—किला छोड़कर, क्योंकि अंग्रेजों का तोपखाना आगरा से आया था। उसने तालाब वाली तरफ से किले के पिछवाड़े हमला किया था। अंग्रेजों के पास ताकतवर तोपें थी, किसी को अन्दाज़ा नही था कि अंग्रेज अपना तोपखाना लेकर आएंगे।

अंग्रेज महाराजा को किले मे कैद नही कर पाए—किले पर तीन ओर से हमला हुआ था। किसी तरह महाराजा अपने पाच विश्वस्त साथियों के साथ घोड़ो पर भाग निकले थे। अंग्रेजो ने पीछा भी किया था। इलाका मैदानी था—इसीलिए भागते महाराजा और बड़े बाबा ने ही राय दी थी कि वे झांसी की तरफ भागें—उन्हें यह पता नही था कि गौस खान की तोपें खामोश हो चुकी है और झांसी का पतन हो चुका है।

फिर भी छह सवार झांसी की तरफ भागते चले जा रहे थे। तभी चौपुला बम्बा पड़ा था। महाराजा ने अपने घोड़े को एड़ लगाकर बम्बा पार किया था—छलांग लगाकर घोड़ा एक चट्टान पर गिरा था, और गिरते ही उसकी छाती फट गई थी! तब पांच घोड़े रह गए थे। महाराजा अपने प्यारे घोड़े को छोडने के लिए तैयार नही थे—पर घोड़ा भी ऐसा वफादार था कि अपनी फटी छाती लिये वह पानी मे कूद गया था और बहते-बहते गहरे पानी मे खो गया था।

तब बाबा ने अपना घोड़ा महाराजा को दिया था और खुद पैदल झांसी की तरफ चल दिए थे। महाराजा तो निकल गए, पर बाबा को अंग्रेज़ों के सैनिकों ने गोली मार दी थी और बाद में महाराजा को भी कैद कर लिया था। बाबा की लाश नही मिली थी।

तभी से बड़ी दादी कहती थी—मैं तो सदा सधवा हू! मेरा आदमी शहीद हुआ है···

और तभी से बड़ी दादी के मन मे अपनी बेटी कलावती के लिए एक नफरत घर कर गई है। बड़ी दादी और बाबा ने बड़े चाव से अपनी बेटी कलावती की शादी की थी—फर्रुखाबाद के नवाब के दरबारियों में से एक के लड़के के साथ।

उनका दामाद गाजीपुर के अंग्रेज़ी खज़ाने का खज़ाची था। जब गदर

या···बड़ी दादी ने उसका यह हाल देखा तो खुद ही बोल पड़ीं···

—क्यों, क्या हुआ? मुंह पर ताला क्यों पड़ गया? क्या अपना घर, अपनी धरती तुझे कम पड़ती है जो रेलगाड़ी के महकमे में जा रहा है?

—वह बात नहीं है बड़ी अम्मा···

—तो क्या बात है?

—खेती संभालने वाले बहुत हाथ हैं घर में···

—तुझे रोटी की कमी पड़ती है क्या?

—नहीं!

—तो फिर अंग्रेज बहादुर की गुलामी करने काहे जा रहा है—क्या उनकी रोटी में ज्यादा गुड़ लगा है···

—वह बात नहीं है बड़ी अम्मा!

—देख जसवन्त! रोटी तो कुत्ता भी खाता है, जो टुकड़ा फेंक दो, उसे ही खा लेता है, पर मानुष रोटी-रोटी में भेद करता है···तू रोटी का भेद भूल गया है···जैसे तेरी बुआ भूल गई है। तेरी बुआ इसी पेट की जाई है··· पर मेरी कोख उसे जनम देकर चौदह बरस बाद खाली पड़ गई। वह अपने आदमी के साथ अंग्रेज बहादुर की रोटी तोड़ने लगी··· उसकी तड़क-भड़क, हवेली, पैसा, तलवार— तुझे ज्यादा सुहाने लगीं? खैर छोड़, मुझे कुछ नहीं कहना है, जो जी में आए कर जाके···आंधी बीत जाए, आसमान खुल जाए···तू चला जा···

जसवन्त सिर लटकाकर रह गया। बाहर तो आंधी थी ही, उसकी किसकिसाहट आंखों, कानों और दांतों में मौजूद ही थी, पर बड़ी अम्मा की जहर-बुझी बातों ने उसके मन में भी एक टीसती किसकिसाहट पैदा कर दी थी।

--

जसवन्त को बड़ी अम्मा का दुख मालूम था। बड़े बाबा राजा साहब के सिपहसालार थे। 1857 में जब आजादी का संग्राम छिड़ा था तो बड़े बाबा राजा साहब के साथ, खुद घोड़े पर और जान हथेली पर लेक

उनकी रक्षा करने साथ-साथ चले थे। चार घुड़सवार और थे।

राजा साहब को भागना पड़ा था—किला छोड़कर, क्योंकि अंग्रेजों का तोपखाना आगरा से आया था। उसने तालाब वाली तरफ से किले के पिछवाड़े हमला किया था। अंग्रेजों के पास ताकतवर तोपें थी, किसी को अन्दाज़ा नहीं था कि अंग्रेज अपना तोपख़ाना लेकर आएंगे।

अंग्रेज महाराजा को किले में कैद नहीं कर पाए—किले पर तीन ओर से हमला हुआ था। किसी तरह महाराजा अपने पांच विश्वस्त साथियों के साथ घोड़ों पर भाग निकले थे। अंग्रेजों ने पीछा भी किया था। इलाका मैदानी था—इसीलिए भागते महाराजा और बड़े बाबा ने ही राय दी थी कि वे झांसी की तरफ भागें—उन्हें यह पता नहीं था कि गौस खान की तोपें खामोश हो चुकी हैं और झांसी का पतन हो चुका है।

फिर भी छह सवार झांसी की तरफ भागते चले जा रहे थे। तभी चौपुला बम्बा पड़ा था। महाराजा ने अपने घोड़े को एड़ लगाकर बम्बा पार किया था—छलांग लगाकर घोड़ा एक चट्टान पर गिरा था, और गिरते ही उसकी छाती फट गई थी! तब पांच घोड़े रह गए थे। महाराजा अपने प्यारे घोड़े को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे—पर घोड़ा भी ऐसा वफादार था कि अपनी फटी छाती लिये वह पानी में कूद गया था और बहते-बहते गहरे पानी में खो गया था।

तब बाबा ने अपना घोड़ा महाराजा को दिया था और ख़ुद पैदल झांसी की तरफ चल दिए थे। महाराजा तो निकल गए, पर बाबा को अंग्रेजों के सैनिकों ने गोली मार दी थी और बाद में महाराजा को भी कैद कर लिया था। बाबा की लाश नहीं मिली थी।

तभी से बड़ी दादी कहती थी—मैं तो सदा सधवा हूं! मेरा आदमी शहीद हुआ है...

और तभी से बड़ी दादी के मन में अपनी बेटी कलावती के लिए एक नफरत घर कर गई है। बड़ी दादी और बाबा ने बड़े चाव से अपनी बेटी कलावती की शादी की थी—फर्रुखाबाद के नवाब के दरबारियों में से एक के लड़के के साथ।

उनका दामाद गाजीपुर के अंग्रेजी खजाने का खजांची था। जब गदर

हुआ तो उसने अंग्रेजी खजाना भी लूटा और अपनी हवेली में दो अंग्रेजों को पनाह देकर जान भी बचाई। एक तरफ बेईमानी की, दूसरी तरफ वफादारी दिखाई।

और तब से सब-कुछ बदलता चला गया।—बड़ी दादी की जागीरी जमींदारियां छिनती चली गईं और दामाद को तमगे और तलवारें मिलती चली गईं। उनकी बेटी अंग्रेजों की दया से बिना तिलक की रानी कहलाने लगी और दामाद बिना तिलक का राजा—क्योंकि उन्होंने दो अंग्रेजों की जान बचाई थी।

जसवन्त एक बार बुआ कलावती के यहां गया था। तब उसने वहां हवेली में देखा था—फूफाजी की वे बड़ी-बड़ी तस्वीरें, जिनमें उनके फेंटे से मोतियों-जड़ी तलवार लटक रही है। एक ऊंचे स्टूल पर गमले में अंग्रेजी पौधा लगा है और फूफाजी अंग्रेजी लिबास पहने, कोहनी टिकाए शान से उन तस्वीर में खड़े हैं—पीछे दीवार पर महारानी विक्टोरिया की फोटो लगी है। घर में फिटन थी, तीस-चालीस नौकर-चाकर थे। जमींदारियों से आया अन्न भरने की जगह नहीं थी, जो रोज सुबह गरीबों में बांटा जाता था···गरीबों का झुण्ड रोज सुबह उनकी बड़ी हवेली के फाटक पर आता।

तब फूफाजी का एक पुराना नौकर जाकर उन्हें जगाया करता था—साहेब! जय-जयकारी आ गए।

फूफा जय-जयकार से ही जागते थे।

वे बरसात के दिन थे। मूसलाधार पानी बरस रहा था। एक सुबह जब जय-जयकारी नहीं आए, तब साहेब के सारे सेवकों ने ही मिल कर फाटक पर जय-जयकार किया था, तब उनकी आंख खुली थीं।

वह चीखी थीं—इन सौगातों में तुम लोगों के पिता और बाबा के खून के छींटे हैं। ये अपवित्र हैं। जसवन्त को भी कहीं बाहर वाले दरवाजे पर खड़ा कर दिया गया था—पहले उसपर गंगाजल छिड़का गया था, फिर भीतर आने दिया गया था।

जसवन्त तब छोटा था, वह यह सब समझ नहीं पाया था। उसी दिन दादी ने घर में ऐलान कर दिया था—कलावती अब कलावती

नहीं—वह कलंकवती है, उसके घराने से हमारा कोई लेना-देना नहीं है।

जसवन्त को सब-कुछ याद आ गया—और पिछले सब बरस भी। लेकिन उसने मिडिल पास किया था, अब गाव मे रहकर बेकार पड़े रहना उसे सुहाता नही था और वह यह बता भी नही सकता था कि सच पूछो तो फूफाजी ने ही उसे रेलवे के महकमे की नौकरी दिलवाई थी। वह चाहता था—बड़ी अम्मा को यह बात न मालूम होने पाए। उन्हें मालूम होगी तो बहुत वावेला मचेगा।

जसवन्त इसीलिए ज्यादा बात नही कर रहा था। आंधी तो कब की गुजर गई थी। बड़ी दादी बढ़नी लेकर घर भर की सफाई में उलझ गई थी, लेकिन उनके चेहरे का कड़वापन अभी गया नहीं था। जसवन्त यह भांप रहा था। अब बड़ी दादी बात भी खुद नहीं करना चाहती थी, और जसवन्त को नौकरी पर जाना था। आखिर वह खुद ही उनके पास गया और धीरे से बोला था—

—बड़ी अम्मा!

—बोलो!

—मुझे जाना ही पड़ेगा।

—तो अपने अम्मा-बाबू से पूछ लो और चले जाओ। मुझसे क्या पूछते हो?

जसवन्त के पिता और मां की हिम्मत नहीं थी कि बड़ी दादी के सामने बोल जाएं। उसकी अम्मा सिर झुकाए सफाई मे लगी रही। बापू जी अपनी चुटिया टोपी के नीचे करके गर्दन पर खुजाते हुए बाहर की तरफ टहल गए।

—बड़ी अम्मा! जब तक तुम कुछ नही कहोगी, तब तक कोई बोलेगा नही। तुम हां कह दो तो सब ठीक हो जाएगा।

—बोल बहू! तू क्या कहती है? बड़ी दादी ने जसवन्त की मां से पूछा था, फिर जसवन्त की बहू को आवाज लगाकर बोली थी—छोटी

बहू, तू बोल।

सबके मुंह पर ताले पड़े थे। वे आंखों-आंखों में देख भी नहीं रही थीं। आखिर बड़ी दादी ने सबकी तरफ बारी-बारी से देखकर, फिर सवाल दोहराया था—

—बोल बड़ी बहू! क्या कहती है?

—मैं क्या कहूं! जो आप कहेंगी, वही तय होगा।

—लेकिन, हमने तो तय कर लिया है। उनका इशारा जसवन्त की तरफ था। फिर अपने सन-जैसे सफेद बालों की लट को समेटती हुई वह बोली थीं—

—तू शहर कब गया? कब जाके तू गुलामी की नौकरी तय कर आया? '57 में तो बाबा शहीद हुए—तब तेरा बाप तीन साल का था। बयालीस बरस उसे पाला है, यही सोचकर कि ये जिएगा तो फले-फूलेगा। यह आंगन किलकारियों से चहकेगा और किसी दिन इस कोख का जाया कोई माई का लाल अपने बाबा की मौत का बदला लेगा। महाराजा साहब की गढ़ी की दीवार में जो अंग्रेजी गोला लगा था—उसका हिसाब चुकता करेगा।

कहते-कहते बड़ी दादी ने अपनी आंखें पोंछ ली थीं। नौसाट से निपटी साढ़े सात बरस की शान्ता बड़ी दादी को टुकुर-टुकुर देख रही थी। उस पर नजर पड़ते ही बड़ी दादी ने जसवन्त से पूछा—तू छोटी बहू और जसवन्त को भी ले जाएगा?

बड़ी दादी शान्ता को प्यार से सन्तो पुकारती थीं। सन्तो ने अपना नाम सुना तो एकदम बोली—बड़ी दादी! मैं तुम्हारे पास रहूंगी।

बड़ी दादी ने उसे कमर से चिपका लिया और जसवन्त की मां को हुक्म दे दिया—बड़ी बहू! इसे जाने दे…छोटी बहू भी जाना चाहे तो चली जाए…बस, सन्तो मेरे पास रहेगी।

शान्ता अपनी बड़ी दादी की टांगों से और भी चिपक गई। बड़ी दादी ने जसवन्त की बहू को भी हुक्म दे दिया—अपनी गठरी-बठरी बांध ले।

—तो फिर मैं आज ही चला जाऊं?

—क्यों, कल नहीं जा सकता ?

—आज का बोला था।

—आज दिशाशूल है ! कल भी दिन अच्छा नहीं है, पर तू कल चला जा···और सुन, बड़ी बहू, कल के लिए परस्थान किए देती हूं··· बहू को लेकर जाएगा, कोई विघ्न-बाधा न पड़े। पूड़ियां-तरकारी बना देना रास्ते के लिए !

कहते हुए उन्होंने मन्नो से कहा—जा, जाके दूब नोंच ला ! तेरे बाप का परस्थान कर दूं !

कहती हुई बड़ी दादी अपने कमरे में गईं—एक गठरी को खोलकर उन्होंने नये कपड़े का एक टुकड़ा फाड़ा, उसे लेकर चौके में गईं। हल्दी की एक गांठ रखी, चावल के दाने रखे, गुड़ का छोटा-सा टुकड़ा लपेटा, तांबे की एक पाई डाली और सन्तो के हाथ से दूब के तिनके लेकर उन्होंने परस्थान तैयार कर दिया।

परस्थान को सन्तो के हाथों में थमाते हुए बोलीं—जा सन्तो, इसे मुर्जों के घर रख आ। कहना, कल जसवन्त जा रहा है, छोटी बहू जा रही है। बन्दरों को भुने चने डाल दे और यह परस्थान रख ले। कल जसवन्त जाए तो उसे दे दे।

शान्ता भागती चली गई।

तभी कांव-कांव करते कौओं का झुण्ड आकर मुंडेर पर बैठकर नीचे ताकने लगा। बड़ी दादी ने देखा तो हाथ में रोटी लेकर वह ऊपर छत पर चली गईं···

घर में चूल्हा जल गया। पूड़ियां तलनी थीं। तरकारी सुबह बनेगी, रात को बनाके रखी जाएगी तो बुस जाएगी। जसवन्त की मां अचार-बचार निकालने लगीं।

तब तक जसवन्त के पिता लौट आए थे। बाहर कोई आदमी आया था। एक पर्चा लाया था। उन्होंने वह पर्चा चुपचाप जसवन्त को दे दिया था।

वह पर्चा फर्रुखाबाद वाले फूफाजी के पास से आया था। जसवन्त एकदम घबरा गया था—कहीं बड़ी अम्मा ने देख लिया तो हंगामा खड़ा

हो जाएगा। उसने इधर-उधर तेज़ नज़रों से देखकर अपनी पत्नी से पूछा था—बड़ी अम्मा कहां हैं ?

—ऊपर छत पर कौओं को खिलाने गई हैं !

बड़ी दादी जब छत से उतरीं तो एकदम ख़ामोश थीं। सबने देखा, वह कुछ बोल नहीं रही थीं। उनकी ख़ामोशी सबको खटक रही थी।



सुबह सूरज निकलते ही बैलगाड़ी बाहर दरवाज़े पर लग गई थी। जसवन्त की बहू चुपचाप खड़ी थी। उसकी गठरी और फूलदार टीन का बक्सा गाड़ी में रख दिया गया था। जसवन्त का बक्सा भी।

—जाओ…छोटी बहू।

शान्ता की मां चली तो अपनी सास के पैर छूने से पहले वह बड़ी अम्मा के पैर छूने के लिए झुकी। बड़ी अम्मा ने कुछ नहीं कहा, बुदबुदा कर उसे आशीर्वाद दे दिया। जसवन्त पैर छूने के लिए बढ़ा, तो बड़ी दादी ने अपने पैर हटा लिये।

—क्यों, बड़ी अम्मा !

—ठीक है…आख़िरी बार छू ले।

—ऐसा क्यों कह रही हो बड़ी अम्मा ?

बड़ी दादी कुछ नहीं बोलीं, सिर्फ इतना कहा उन्होंने—

—नन्नो को भी लेते जाओ…

—क्यों ? वह तुम्हारे पास रहेगी। तुम्हीं ने कहा था।

—अब मैं किसी के पास नहीं रहूंगी। कहते हुए बड़ी दादी ने अपनी आंखें पोंछ ली थीं।

बैलगाड़ी चली तो बड़ी दादी ने हाथ में पड़ी सोने की अकेली चूड़ी निकालकर छोटी बहू को पहना दी थी और अपना हाथ नंगा कर लिया था। जाते-जाते जसवन्त को याद दिला दिया था—जसवन्त बेटा ! मुंशी के यहां से परस्थान ले लेना। ईसन नदी का पुल पार करे तो परस्थान

नदी में गिरा देना।



जसवन्त अपनी बहू को लेकर घर से चला गया। घर पर रात उतर आई। पैर दबाने के लिए जसवन्त की मां जब अपनी सास के पास गईं, तो देखा, वह खटिया पर बैठी सिसक-सिसककर रो रही थीं। उन्होंने सन्तो को आवाज़ दी—सन्तो, कुप्पी ले आ।

सन्तो ने उन्हें रोते देखा तो एकदम परेशान हो गई, उनके आंसू पोंछते और झुर्रियों से भरे मुंह को अपनी नन्हीं-नन्हीं हथेलियों में दबाते हुए सन्तो ने पूछा—बड़ी दादी! का हुआ?

—कुछ नहीं बेटा! तू सो जा···कहते हुए उन्होंने उसे एक तरफ दुबका लिया।

जसवन्त की मां बहुत चाहती रहीं थीं कि अम्मा जी कुछ बात करें, पर वह खामोश ही रहीं। कुछ न समझकर आखिर उन्होंने ही कहा—जसवन्त और बहू तो पहुंच गए होंगे···

बड़ी दादी ने न 'हूं' की, न हां! उन्होंने सूनी कलाई वाला हाथ अपनी छाती पर रख लिया।

जसवन्त की मां ने फिर बात छेड़ी—खाने-पीने की तकलीफ नहीं होगी, बहुत रख दिया है। सकरपारे और मठरी भी बना दी हैं···अचार भी रख दिया है···

बड़ी दादी को जैसे कुछ नहीं कहना था। उन्होंने सन्तो का सिर सिरहाने से सरकाकर नीचे से चाबियों का एक छोटा-सा गुच्छा निकाला और धीरे-से बोलीं—

—बड़ी बहू! ये दो चाबियां हैं। यह वाली उस कोठरी की है, जिसमें शिव-मन्दिर का सामान रखा है जो शिवरात्रि पर घर से आता है और यह दूसरी चाबी उसी की बगल वाली तिदरी की—जिसमें होली की दावत का सारा सामान भरा है···परातें, थालियां, कटोरियां, गंगासागर

और बाकी सब···बड़ी वाली दरियां भी उसी में हैं। ताड़ वाले पंखे ऊपर वाली अटारी में हैं, उनके किनारे टूट रहे हैं, लाल कपड़े की गोट लगा लेना। मेरा लाल वाला लहंगा है न, उसे फाड़ लेना।···बड़ी दादी यह सब कहती जा रही थीं तो जसवन्त की मां मन-ही-मन उदास होती जा रही थीं···उन्हें उम्मीद नहीं थी कि अम्माजी एकाएक ऐसी बातें करने लगेंगी और जसवन्त के जाने से उन्हें इतनी चोट पहुंच जाएगी। और कुछ न समझकर उन्होंने इतना ही कहा—

—अम्माजी! तो यह सब मुझे काहे को बता रही हैं। होली तो अभी गई है, साल-भर पड़ा है और शिवरात्रि···

—अब मेरे पास वक्त नहीं बचा है!

—ऐसा मत कहो अम्माजी···जो मन में आता है, बोल दो···कहो तो नत्थू को भेजकर जसवन्त और बहू को वापस बुला लें!

—नहीं! काहे को! बुलाया और समझाया उसे जाता है जो बिना समझे चला जाता है। जो सोच-समझ के जाए, उसे बुलाना क्या? जागते को जगाना पड़ता है क्या?

—वो तो तुम ठीक कह रही हो अम्माजी! लेकिन तुम बतातीं काहे नहीं, मन में क्या घुमड़ रहा है?

—बहुत-कुछ घुमड़ रहा है बहू! पूरे 43 बरस घुमड़ रहे हैं···तेरे ससुर की मौत घुमड़ रही है···महाराजा साहब की गढ़ी की दीवार में धंसा हुआ अंग्रेजी गोला घुमड़ रहा है!···फिर एक गहरी सांस लेकर बड़ी दादी ने कहा था—

—बहू! मेरी कोख के जाए को तूने पति माना···मुझ पर एक बहुत उपकार किया तूने···लेकिन मेरा जाया तो बेकार निकल गया···उसमें न तेज है, न आन···सोचा था तेरी कोख से जनम लेगा···वह कुछ करेगा। लेकिन वह तो एकदम खोटा निकल गया···

—ऐसा मत सोचो अम्माजी! आखिर वह तुम्हारा ही खून है।

—सभी माताओं का बहुत खून बेकार जाता है बहू···मुझे अपनी पर नहीं, तेरी सन्तान पर भरोसा था।

कहते-कहते बड़ी दादी फिर रो पड़ीं।

जसवन्त की मां ने उन्हें संभाला—

—अम्माजी ! मन छोटा मत करो···

बड़ी दादी ने अपने आसू पोंछ लिये और बड़ी लाचारी से आह भर कर बोली—

—कुछ नही बहू ! आज मैं विधवा हो गई।

—कैसी बातें करती हो अम्माजी !

—सच कहती हूं बहू ! आज तुम्हारे ससुरजी के खून का हिसाब मांगने वाला अपने घराने में कोई नहीं रह गया। जसवन्त भी मुझसे झूठ बोलकर चला गया···

• शान्ता ने पलटकर बड़ी दादी को देखा।

रात बहुत उतर आई थी। बड़ी दादी ने फूंक मारकर कुप्पी बुझा दी और बहू को सोने के लिए भेज दिया।

२४

दूसरी सुबह एकदम चीखती सन्तो उठी—अम्मा ! बापू ! बड़ी दादी कहां हैं ? बड़ी दादी···

बड़ी दादी को बहुत खोजा गया—पर वह कहीं नहीं मिली। न मालूम, कहां लापता हो गई !

कई दिन बीत गए, पर उनका कुछ पता नहीं चला। सब उदास बैठे थे तो सन्तो ने इतना ही कहा—

—उस रात अम्मा जब उनके पैर दबाकर चली गईं, तो बड़ी दादी बता रही थीं—वे कौए फर्रुखाबाद से आए थे···बड़ी दादी ने उन कौओं से बात की थी···

बड़ी दादी का कुछ पता नहीं चला। उन्हें बहुत ढूंढा गया। आस-पड़ोस के घर-घराने में पता किया गया। राह-चलते लोगों से मालूम

या गया। सगनौतियां उठाई गईं, पण्डित-ज्योतिषी से जानका
—काशी-प्रयाग जा के भी देखा गया। एक-एक पण्डे की वही में नाम
ज गया, पर पता कुछ नहीं चला। बापूजी खुद हरिद्वार, ऋषिकेश
ए। साधू-सन्तों के आश्रमों-कुटियों में उन्हें तलाशा गया, पर कुछ भी
मालूम नहीं पड़ा।

जसवन्त की मां ने तो कहा भी—कोई परिन्दों से बात कर पाए तो शायद अम्माजी का पता मालूम हो जाए। उन्हें जाते हुए परिन्दों ने तो देखा होगा।

जसवन्त भी आया था। बाबूजी ने उससे कहा था—वह भी कहीं खोज-खबर ले, तो जसवन्त ने अपनी मजबूरी जाहिर कर दी थी—

—बाबूजी, मेरे लिए तो मुश्किल है—हर दूसरे दिन एक रेलगाड़ी आती है, पता नहीं, कब आ जाए, उसे जगह पर रोकने के लिए लाल झण्डी दिखा-दिखा के हलकान हो जाता हूं। फिर इंजनबाबू को सब समझाना-बताना पड़ता है। उन्हें पानी पिलाना पड़ता है। सरकारी सामान की फिर फेहरिस्त बनानी पड़ती है। रवन्ना काट के देना पड़ता है। वैसे तो खैर पदवी में इंजनबाबू हमसे ऊंचा है, लेकिन जब तक हम रवन्ना काट के न दें, रेलगाड़ी अपनी जगह से हिल नहीं सकती। अंग्रेज बहादुर की एक बड़ी बात है बाबूजी।

—क्या ?

—यही कि हर आदमी के हाथ में राज है। इंजनबाबू हमसे बड़ा सही, लेकिन हमारी पर्ची के बगैर वह सीटी नहीं दे सकता, गाड़ी नहीं चला सकता !

—हां···यह बात तो है।

तभी अम्मा ने टोका था—

—वक्त कितनी जल्दी बदल जाता है। अम्माजी को गए अभी व
दिन नहीं हुए हैं और घर में अंग्रेज बहादुर की तारीफें होने लगीं।
होतीं तो तुम दोनों बाप-बेटों की यह हिम्मत नहीं थी।

—तो हमने कुछ गलत कहा ! या बाबूजी ने ? सच्ची अम्मा
यह सही बात है ? अंग्रेजों ने ऐसा तरीका निकला है कि बड़े-से-

भी रोका जा सकता है! एक दिन इंजनबाबू कहने भी लगे—वैसे तो गाड़ी हमारे हाथ में है, पटरी सीधी है, पर हम सीधे जा नहीं सकते। तुम्हारी पर्ची अगले अड्डे पर देंगे, तभी नई पर्ची मिलेगी। पर्ची लिये बिना आखिरी अड्डे पर पहुंच जाए तो उसी दिन छुट्टी हो जाएगी।··· समझीं अम्मा! हर कारकुन के हाथ में कुछ-न-कुछ है। जसवन्त ने बहुत कुछ समझाने की कोशिश की।

लेकिन अम्मा का अपना सोचने का आजाद तरीका था, वह बड़ी दादी की तरह बोली—

—जो भी हो···हमें तो लगता है, तुम्हारे अंग्रेज बहादुर ने एक को दूसरे की पूछ पकड़ा दी है—जो जिसकी पूछ चाहे उमेठ दे। आदमी अपने मन की करता है तभी सुखी रहता है···

—इसका मतलब हुआ अम्मा, कि इंजनबाबू के मन में आए तो गाड़ी न रोकें?

—काहे को न रोकें! मन का करना और मनमानी करना अलग बातें हैं। मन वही करना है जो दूसरे के मन को अच्छा लगे। जसवन्त की मां बोल ही रही थी कि बाबूजी ने ठहाका लगाया—

—अम्मा तो गई, कोई बात नहीं···घूमती-फिरती किसी दिन आ जाएंगी, पर घर में अम्मा की कमी नहीं रहेगी···अब ये उन्हीं की तरह बातें करने लगीं।

—तो इसमें हंसने की क्या बात है! यह घर तेरी बड़ी अम्मा का ही है और रहेगा।

—खैर, अम्मा, छोड़ो···जसवन्त ने बहस में नहीं पड़ना चाहा। उसने बात बदली—तुम्हें यहां इंजन की सीटी सुनाई पड़ती है?

—हां! बाबू! हां! सन्तो चहक के बोली—जब सुनाई पड़ती है, तो हमें मालूम हो जाता है···बाबू की रेलगाड़ी आ गई···बड़ी देर तक धक्-धक् आती रहती है। पूरी धरती हिलती है।

—अंग्रेज बहादुर का हुकम है, इंजनबाबू बता रहे थे—कि बस्तियों के पास से निकलो तो खूब सीटी दे के गाड़ी चलाओ···ताजा कोयला पेट में डाल के खूब धुआं उड़ाओ···

—काहे को रे ? अम्मा ने भौंहें चढ़ाके पूछा।

—सबको पता चले—सरकारी गाड़ी आ रही है। इंजनबाबू बता रहे थे, जब कोसमा से गाड़ी आती है तब सब बइयरबानी (औरतें) अपने-अपने घरों में भाग जाती हैं, डर के मारे लोग कोसों कूदते-भागते चले जाते हैं। पटरी किनारे एक इमली का पेड़ पड़ता है…गाड़ी के झकोरे से तमाम इमलियां टूट कर गिरती हैं, पर उठा नहीं पाते…हुआं गाड़ी रोकने का हुकम नहीं…गाड़ी कोसमा पार करके तभी रुकती है, जब हम लाल झण्डी दिखाते हैं।

—ये कोई अच्छी बात है ? अम्मा ने तुनक के कहा और उठ गई।

तब शान्ता ने पूछा था—

—बाबू ! तुम्हारी रेलगाड़ी कैसे चलती है ?

—कोयला खाती है और पानी पीती है। अगले अड्डे पर पानी की बहुत बड़ी टंकी बनाई है…वहीं रुक के पानी पीती है। सीटी देती है और आगे चली जाती है। दिन भर में पचीस कोस लांघ आती है।

सन्तो और तमाम छोटी-छोटी बातें पूछती रही थी और जसवन्त उसे बताता रहा था। तब तक जसवन्त की मां ने पूड़ियां, तरकारी बना दी थीं। जसवन्त को लौट के जाना था, वहां बहू अकेली थी।

बड़ी कोठरी में बैठके जसवन्त अपने बापू को बहुत-सी चीजें दिखा रहा था। कुछ चीजें तो हैरत में डाल देती थीं। जसवन्त ने जेब से एक मुड़ा हुआ काला कागज़ निकाला था—बड़े सम्भाल के बापू को दिखाया था। कितना अजीब कागज़ था। पन्नी की तरह हल्का, मगर जादूभरा। ऐसा कागज़ तो कभी सोचा भी नहीं था। दूसरे कागज़ पर रख दो तो जस-की-तस चिट्ठी लिख जाती है। हरूफ-का-हरूफ उतर आता है। बात अचरज की है। अंग्रेज़ बहादुर के पास बड़ी हिकमत है।

उसके बाद जसवन्त ने दूसरा अजूबा दिखाया था—एक पीली कलम जसवन्त ने निकाली थी। ऐसे लिखो तो सुरमई लिखती थी, थूक में डुबो दो तो बैंगनी लिखने लगती थी। रोशनाई तो सबने देखी थी, पर रोश-नाई वाली यह कलम सचमुच अजूबा थी।

बापू ने बेटे से दोनों तरह से लिखवाया। उस जादूभरे कागज़ का

लिखा पर्चा भी जेब मे सम्भाल के रखा और जसवन्त से उस जादुई कागज का छोटा-सा टुकड़ा भी मांग लिया। पीली कलम जरूर जसवन्त ने नही दी—

—नहीं बापू ! यह सरकारी कलम है। इसका लिखा फौरन पहचाना जाता है। रंग अलग है न···यह कलम अंग्रेज बहादुर सिरफ़ अपने भरोसे के आदमियो को देता है, सब को नही। तुम भी ख्याल रखना—इसका लिखा किसी के हाथ मे न पड़ने पाए। दिखाना चाहे जिसे, पर यह लिखा हुआ पर्चा अपने पास रखना। जसवन्त ने अपने बापू को आगाह किया था। बापू ने भी बहुत गहरी हामी भरी थी—

—हां भई, जमाना खराब है। तुम भी ध्यान से काम करना। अंग्रेज बहादुर की नौकरी सब के बस की नही है। भरके पैसा भी देते हैं, कही लिखा-पढ़ा कागज किसी के हाथ मे पड़ गया तो क्या पता, क्या हो जाए ! बापू बोले थे।

—वह नही हो सकता। सिवा इन्जनबाबू के कोई मेरा लिखा कागज नही पा सकता। बाद मे सब कुछ ताले मे बन्द रहता है। जसवन्त अपने बापू को बता ही रहा था कि मा आ गई, खाने की पोटली लेकर।

उसने पोटली वही तखत पर रख दी। बापू ने जसवन्त का दिया जादुई कागज का टुकड़ा और जस-का-तस लिखा हुआ पर्चा बड़े सम्भाल के जेब मे रख लिया, कुछ इस तरह कि जसवन्त की मा न देखने पाए।

—वहू का मन लग गया हुआ ? मा ने पूछा था।

—हा, बहुत खुश है। हिआ तो कुछ काम करने को था ही नही। हुआं तो बहुत काम है। जब गाड़ी आती है तो पहर पहले पता चल जाता है कि आ रही है। दरवाजे पर खड़ी होके देखती रहती है, जब तक गाड़ी खड़ी रहती है। हमे तो टैम ही नही मिलता···

—का नहीं मिलता ? मा ने पूछा था।

—टैम···वखत···समय !

—अच्छा···अच्छा···अंग्रेज बहादुर ने बताया होगा···

—तो और क्या ! हुआ सब कुछ इगरेजी मे लिखना पड़ता है !

—लिखो इंगरेजी मे ! हमे का ! कहती हुई जसवन्त की मां फिर

उठ गई, जाते-जाते पूछती गई—

—सन्तो को नाहीं ले जाना है ? तू कह रहा था।

—बुलाया तो है उसने···अब तुम सोच लो अम्मा !

—मैं का कहूं···अपने बापू से पूछ लो।

—इसे तो बड़ी अम्मा की खातिर छोड़ा था। अब कहं जाऊं !

जसवन्त ने सन्तो को बुलाके पूछा तो सन्तो ने एकदम म दिया।

—नहीं बाबू ! हम हिंअइं रहेंगे ! का पता कब बड़ी दा आएं···

बात फौरन तय हो गई। सन्तो का मन नहीं था, वह नहीं जा जोर-जबरदस्ती का कोई सवाल नहीं था। सबका मन अपना म मनमानी किसी की नहीं थी।



सन्तो चुपचाप चली गई थी। उसे असल में बड़ी दादी की बहुत आती थी। वह रोज़ उनकी चीज़ें उसी तरह उठाती-धरती रहती थी बड़ी दादी करती थीं। वह उनके भगवानजी को भी नहलाती रहत और उसी तरह पूजा कर देती थी। उन्हीं की तरह बैठकर चन्दन घि थी। छोटे चन्दन वाले चके से उसी तरह हथेली से चन्दन उठाती थी, बड़ी दादी उठाती थीं और पूजा के बाद सबके माथों पर चन्दन थीं।

कभी-कभी जसवन्त की मां को अपनी सास की याद आती थी सन्तो को बुलाकर पास बैठा लेती थीं—मेरे पास बैठ आके !

—काहे ! सन्तो पूछती थी।

—बस कहा न···

मां कुछ बताती नहीं थीं—पर सन्तो इतनी समझदार तो हो थी—वह मां के मन के दुःख को समझती थी। बड़ी दादी के जा

ां बहुत अकेली हो गई थीं। सपने में उसने सोचा ही नहीं था कि बड़ी दादी कभी जाएंगी भी।

—अम्मा! मेरे पास से बड़ी दादी जैसी महक आती है न?… इसीलिए तुम बुलाके पास बैठाती हो। ठीक बात है न? मन्नो ने मां से पूछा था। वह जानती थी—पूजा की बड़ी दादी वाली महक अब उसमें आने लगी थी। हथेली का चन्दन दूसरे दिन तक हल्का-हल्का महकता रहता था।

—इस रेल ने हमारा घर बिगाड़ दिया! मां ने गहरी सांस लेकर कहा—सब बारह बाट हो गया। बहू हुआ चली गई…अम्मा का कुछ पता नहीं…न मालूम का खाती हैं, का पीती हैं…कौन उनके पैर दबाता है…कहते-कहते जसवन्त की मां फफक-फफककर रो पड़ी थी।

तब धान्ना ने उन्हें पुरखिन की तरह सम्भाला था—

—नहीं अम्मा! नहीं! बड़ी दादी का तो सब कोई है…सूरज… पेड़, परिन्दे! उन्हें जब हमारी याद आएगी तो लौट आएंगी। हम भी तो उन्हीं के हैं अम्मा! तुम रोती काहे को हो?

—फिकर से रोती हूं बेटा!…कहती हुई वह उठी तो कोठरी के सामने से गुजरते हुए उन्होंने देखा—बाप-बेटे कोई जरूरी बात कर रहे थे।

यह बात कि बहू को बहुत काम रहता है हुआं, जसवन्त के बापू के मन में अटक गई थी—और यह भी कि गाड़ी आने की आहट से ही बहू दरवाजे पर खड़ी रहती है और जब तक गाड़ी नहीं जाती—देखती रहती है।

इसी बात को बापू ने बहुत घुमाके जसवन्त से पूछा था—

—तुम्हारा इंजन-बाबू कैसा आदमी है? उसको घरवाली है?

—हां, है! पर बोलता था—घर पहुंचने में दो-दो दिन लग जाते हैं—पचीस कोस आना, पचीस कोस गाड़ी ले के जाना।

—नाम का है?

हिन्दुओं पर। मुसलमान पर अंग्रेज़ वहादुर को भरोसा नहीं है ! जसवन्त ने वहुत गम्भीरता से जैसे राज की वात वताई थी।

—हां भई, अंग्रेज वहादुर ने उनका राज जीता है न ! जसवन्त के वापू ने कहा तो पटाक् से आवाज आई—

—अंग्रेज वहादुर ने सिरफ मुसलमान् का नहीं, सवका राज जीता है !—यह आवाज़ जसवन्त की मां की थी।

—तुम हर वात में टांग मत अड़ाया करो !

—अम्मा तो यही कहती थीं ! राजा कोई भी रहा हो, राज तो सवका था ! जसवन्त की मां ने जवाव दिया।

तभी महाराजजी आ गए, नहीं तो शायद वात वढ़ जाती। जसवन्त की मां अपना पल्लू सिर पर ठीक करती चलने लगी थी।

—वहू रुको ! महाराजजी ने हांक लगाई—वहुत गणित लगाके मैंने पता लगाया है···मालकिन निश्चय ही उत्तर दिशा की ओर गई हैं ! हमारा गणित वताता है कि वे निश्चय ही लौटकर आएंगी और लम्वी आयु तक जीवित रहेंगी !

—आपके गणित ने क्या खास वताया, यह तो हमारा मन भी वताता है महाराजजी ! जसवन्त की मां ने आंखों को पल्ले से वचाते हुए कहा।

—आप हमसे वात करो महाराजजी ! जसवन्त के वापू ने पण्डितजी की इज़्ज़त वचाते हुए कहा—अम्मा के जाने के वाद से यह तो पगला गई है···वस ऊटपटांग वातें करती है। जिसको देखो, इज़्ज़त उतार के धर देती है !

जसवन्त की मां ने पति की वात पर कोई ध्यान नहीं दिया, वह चली गई। फिर वड़ी देर जसवन्त और वापू और पण्डितजी के वीच न जाने क्या-क्या भाग्य और भविष्य की वातें होती रहीं। वर्त्तानिया सरकार की वातें होती रहीं। पण्डितजी आखिर में इतना ही वोले थे—

—हमारा तो हर गांव-जवार में जाना होता है। तुम्हारी रेल का धुआं खेती को चौपट कर रहा है। पटरी डालने के लिए खेत काट डाले गए हैं, चरागाह खत्म हो गए हैं। गांव-घरों के आंगन के वीच से तुम्हारी रेल चलती है। लड़की-वहुएं नंगी हो गई हैं। जानवर उटकने लगे हैं···

धरती थरथराती है जिससे पेड़ों की जड़ें ढीली पड़ गई हैं…।

—वह सब तो है महाराजजी, पर सोचो, रेल ने दूरी कितनी कम कर दी है। सारा सामान, लदावन एक जगह से दूसरी जगह पहुंच जाती है! पहले आपको फर्रुखाबाद जाना हो तो कितने दिनों में पहुंचते थे, अब सूरज डूबते फर्रुखाबाद पहुंच सकते हो।

—लेकिन तुम्हारी धुआंगाड़ी में बैठना कौन है! अपने तो पैर अच्छे या अपनी बैलगाड़ी भली। कहते हुए महाराजजी अपनी चुटिया सहलाते, धोती की लांग खींचते, 'हरिओम…हरिओम' कहते चल पड़े।

जसवन्त खाने की पोटली लेकर चलने लगा तो मां के पैर छूने गया।

मां का हाल देखते ही अचरज में पड़ गया। मां खुद अपना सामान बांधे तैयार थी। जल्दी-जल्दी सन्तो की चोटी गूंथ रही थी। एकाएक जसवन्त समझ नहीं पाया कि मां ने कहां की तैयारी की है। उसने दबते-मुंह पूछा—

—अम्मा, यह…।

—मैं तुम्हारे साथ चल रही हूं।

जसवन्त के बापू अवाक् रह गए—चीखे—

—तुम्हें हो क्या गया है? जो मन में आया करने लगी हो। न पूछती हो, न गछती हो! यह तुम्हारा ढंग क्या है! अब गठरी बांध के तैयार हो गईं…।

—हां! मैं बहू के पास रहूंगी! वह अकेली परदेस में पड़ी है…

—तो पूछना था!

—पूछना का था। तुम लोगों ने कुछ भी पूछ के किया? औरत घर बनाते-बनाते मर जाती है, तुम आदमी लोग घर को एक पल में तहस-नहस कर देते हो! जसवन्त नौकरी करेगा…यह पूछा था तुम लोगों ने अम्मा से? जो मन में आया किया…मेरा सोने का घर तुम लोगों ने राख में मिला दिया। अम्मा के मन पर पत्थर की सिल बांध दी…। तुम्हारी रेल का चली—तुम लोग को अपनी धरती-गांव छोड़ के गुलामी करने का रास्ता खुल गया…। जसवन्त की मां धड़ाधड़ जो मन में आया, कहती जा रही थी—यह घर अम्मा का था! उन्हीं के प…

में दिया करता था…उन्हीं का कहा चलता था…।

—तो का हो गया ! अम्मा का जनम भर बैठी रहतीं ! आखिर जसवन्त का बापू चीख पड़ा था।

—मालूम है का हुआ है इस घर को…जब से अम्मा गई हैं ?

—का हुआ है ?

—इस घर पे न मोर नाचते हैं, न बन्दर आते हैं, न परिन्दे ! हमें तो लगता है—नागपंचमी पे नागदेवता भी इस बार दूध पीने नहीं आएंगे…शिवरात्रि पे मन्दिर का कलस भी नहीं चढ़ेगा…। इस बार शिवजी तुम लोग की पूजा भी ग्रहण नहीं करेंगे ! जानते हो कितना पाप पड़ा है इस घर पर ! अम्मा की आत्मा जहां कलपती होगी…वहीं से असगुन उठता होगा !

— अब हम का करें ! जसवन्त के बापू ने अपना माथा ठोंक लिया— का हमें अम्मा का दु:ख नहीं व्यापता ? हमारे मन पे चोट नहीं लगती ! कहां-कहां भागा-भागा नहीं गया, पर अम्मा तो ऐसी अलोप हुईं जैसे आत्मा !

—शुद्ध आत्मा ऐसे ही अलोप होती हैं !

—तो अब का किया जाए ? तुम्हीं बोलो न ? और तब सब कुछ तय हुआ था।

जसवन्त ने नौकरी की है तो अब उसे छोड़ा नहीं जा सकता। इससे अंग्रेज आला अफसर नाखुश हो जाएगा। उसकी रेल मैनपुरी से आगे कैसे बढ़ेगी ! हरी झण्डी तो जसवन्त को ही दिखानी पड़ती है।

—घर को लाल झण्डी दिखा के रेलगाड़ी को हरी झण्डी दिखा रहा है जस्सू ! जसवन्त की मां ने फिर ताना कसा तो जसवन्त तिलमिला कर रह गया। पर वह बात को बढ़ाना नहीं चाहता था—वह जानता था कि मां पढ़ी-लिखी नहीं हैं और उसे भला क्या अन्दाज कि अंग्रेजी हुकूमत क्या चीज है ! यह नई जिन्दगी क्या चीज है—गोरा साहब क्या है, वह जो तालीम देता है, वह कितनी कीमती है, वह जैसे राजकाज चलाता है, वह कितना गजब का है—महारानी विक्टोरिया और किंग एडवर्ड का राज क्या है ? मां यह कभी नहीं समझेगी…समझाओ तो भी समझना

नहीं चाहेंगी। मा सचमुच बहुत जिद्दी हैं।

जसवन्त के बापू ने जब इतना कहा कि—

—तुम चली जाओगी तो मुझे कौन देखेगा···घर की देखभाल कौन करेगा। खेत-खलिहान तो मैं देख लूंगा लेकिन···

तो जसवन्त की मां ने बहू की देखभाल के लिए शान्ता का जाना तय कर दिया था। शान्ता ने थोड़ी मुश्किल भी खड़ी की—

—मैं नहीं जाऊंगी। कोई परिन्दा बड़ी दादी का संदेसा लेकर आया तो उससे कौन बात करेगा? परिन्दा लौट गया तो फिर बड़ी दादी का पता कभी नहीं चलेगा।

शान्ता की यह बात सुनकर तीनों एक पल के लिए खामोश हो गए थे। पर जो तय होना था, वही हुआ।

—नहीं, सन्तो का चला जाना ही ठीक है। क्यों, तुझे अपनी अम्मा की याद नहीं आती? जसवन्त की मां ने पूछा तो सन्तो ने बड़ी लाचारी से अपनी बात रख दी।

—सबकी याद आती है बड़ी अम्मा···पर बड़ी दादी की सबसे ज्यादा···।

आखिर शान्ता को मना-मुनू कर जसवन्त के साथ रवाना कर ही दिया गया।



गांव की सीमा तक जसवन्त के बापू दोनों को छोड़ने भी आए। सन्तो ने आंसू भरी आंखों से अपने गांव को छूटते हुए देखा—पके खेत और जगह-जगह छोटे-छोटे खलिहान। दायें चलती हुई हवा में वही बगुले उड़ते हुए। इकौआ की नोंडिया हमेशा की तरह फटती हुई—और उसमें से बुढ़िया के बाल उड़ते हुए। चिलचिलाती धूप मे लहलहाता हुआ जवासा···कटैया के खिले हुए पीले फूल और झरबेरी की झाड़ियों में उलझा कांपता हुआ मकड़ी का झिलमिल जाला···धूल से भरा। जहां-तहां मटमैली पत्तियों के बीच लाल मोतियों की तरह लगे हुए झरबेरी

के सूखे वेर।

दूर पर छूटता हुआ शिव-मन्दिर। फटी हुई पताका और गर्म हवा के झकोरों से कांपता शिवजी का त्रिशूल···नीम, शीशम और इमली के पेड़ ···आमों से लदे वगीचे···अनकटी सरसों की वजती हुई वालियां···जैसे हवा वज रही हो···। पेड़ों की छाया में हांफते कुत्ते···सीप की तरह उड़ती शीशम की सूखी पत्तियां···।

शान्ता को उसकी दादी ने लू से वचने के लिए खूब पानी पिला दिया था। जव वैलगाड़ी सूखी मेढ़ों से गुजरती या धचका खाती तव उसके पेट का पानी भी डव-डव वजता था। आखिर वैलगाड़ी भट्ठों के पास वाले मोड़ पर लम्बा धचका खाकर कंकड़ की सड़क पर आ गई थी। और गांव की कच्ची धूल भरी पटरी वीस हाथ पीछे छूट गई थी।

गाड़ीवान ने एक पेड़ की छाया तले गाड़ी खड़ी कर ली थी और वैलों को खोलकर दूर वहती नहर पर पानी पिलाने चला गया था।

शान्ता पहली वार गांव के वाहर आई थी···। उसने पहली वार कंकड़ की सफेद सड़क देखी थी। उसने पहली वार ईंटों के भट्टे देखे थे। धुआं देती चिमनियां देखी थीं। पकी ईंटों के चट्टे और कच्ची ईंटों की कतार देखी थी। खरंजा के ढेर देखे थे।

जसवन्त ने पूछा भी था—नहर तक चलेगी ? तो उसने मना कर दिया था। पता नहीं क्यों उसके मन में एक हूक उठ रही थी—अव गांव आना होगा या नहीं ? वड़ी अम्मा और वड़े वापू से मिलना होगा भी या नहीं···? इन रास्तों को, पेड़ों को, इकौआ और झरवेरी की झाड़ियों को दुवारा कभी देख भी पाएगी या नहीं ! गांव-घर की जानी-पहचानी आवाजें सुन भी पाएगी या नहीं ? अगली किसी गर्मी में गोवर-लिपी तिदरी में ठंडक में वैठ भी पाएगी या नहीं···।

वैल पानी पीने गए थे। गाड़ीवान और उसका वापू भी नहर पर चले गए थे। वह जलते भट्टों के सामने पेड़ की छितरी छांह में अकेली वैठी थी। पेड़ के तने पर सफेद चींटे चढ़ रहे थे। जड़ों में दीमक के घर थे, और पेड़ के तने पर एक चौकोर घाव था जिसे वह देखती रही थी···। उस तख्ती जैसे घाव में काले रंग से कोई गिनती लिखी थी। सन्तो समझ नहीं

पाई···।

कंकड़ की सडक सूनी पडी थी। सडक की दोनों कच्ची पटरियों की धूल मटमैली चादर की तरह उडती चली जा रही थी। उसी धूल की चादर मे सूखी पत्तियां ऐसी उलझी चली जा रही थीं जैसे बडी दादी की पुरानी दोहर हो, जिसमें उन्होने खुद फूल-पत्तियां काढी थीं और जब कटकटाती सर्दी पडती थी, तभी वह उसे निकालती थीं। उसी दोहर में सन्तो को लपेट लेती थी और अपनी थुल-थुल छातियों से चिपका लेती थीं। बडी अम्मा खटिया के नीचे हल्की आंच वाली बरोसी सुलगाकर रख जाती थी और बरोसी की गरम राख में शकरकन्दी और आलू भुनते रहते थे···।

सन्तो पता नहीं कहां खो गई थी। बडी दादी के भुर्रीदार दूधों की महक, फिर बरोसी मे सुलगते कण्डो की महक और भुनती शकरकन्दी और आलुओ की महक—और फिर उस मटमैली दोहर की महक।

अकेली बैठी सन्तो फूट-फूटकर रो पडी थी। न मालूम उसे भरी दोपहरी में क्या-क्या याद आया था। कितने तरह के छोटे-छोटे दुख उसके छोटे से मन मे समा गए थे। आसू भरी आखो से उसने गाव को देखा था—कुछ तो आखों मे पानी और कुछ चिलचिलाती धूप की चमकीली चादर और कुछ उडती हुई धूल···उसे कुछ भी साफ-साफ दिखाई नहीं दिया था।

पेड की छाह भी तब तक दूसरी तरफ सरक गई थी। और उसने देखा था—उसका बाबू सहर की नीची पटरी से ऊपर आ रहा था।

सन्तो ने अपनी आखें ओढ़नी मे पोछ ली थीं।

बैल जुत गए थे।

गाड़ी चल पड़ी थी।

ककड़ की सडक पर चलती गाडी के नीचे कड़ाके-दार रोडे फूट रहे थे। अब पहियो की आवाज़ भी वैसी खस-खस वाली नहीं थी जैसी अपने गांव के रास्तो पर आती थी।

सन्तो को सब कुछ पराया लग रहा था—यहां तक कि बाबू भी! और बैलगाड़ी ककड़ के रास्ते पर शहर की ओर चली जा रही थी।

जसवन्त की एक नौकरी से कितना कुछ और क्या-क्या बदल गया था, किसी को कुछ पता नहीं था। पीछे छूटते पेड़ों के तनों पर बने चौकोर घावों की तरफ अपनी छोटी अंगुली उठाते हुए सन्तो ने अपने बाबू से पूछा था—

—बाबू ! ये गिनती क्या लिखी हैं ? पेड़ों पे ?

—यह अंग्रेज़ बहादुर का काम है। उनकी हुकूमत में पेड़ों की गिनती रखी जाती है।

—बाबू ! यह तुमने क्या बोला···!

—क्या ?

—हुकू···!

—हुकूमत बेटा।

—ये का होता है बाबू ?

—तू नहीं समझेगी अभी···।

सन्तो चुप हो गई थी।

तभी दूर से धरती में धमाके की लहरें आने लगी थीं। और बड़ी दूर से आती सीटी सुनाई दी थी।

—गाड़ी कोसमा से छूट गई है ! हम बखत-से पहुंच जाएंगे।···वो रहा सामने अपना नया घर ! जसवन्त ने सन्तो को स्टेशन के बाहर बनी गुमटी सी दिखाई।

—ये घर है बाबू !

—हां !

सन्तो गाड़ी से उतरी तो पैरों में धरती के धमाकों की लहरें लगने लगीं।

—बापू, भूचाल आ रहा है ! सन्तो ने डरते हुए कहा, पर तभी सामने खड़े पूंछ हिलाते कुत्ते को देख कर बोली—बाबू ! भूचाल आता है तो यहां के कुत्ते नहीं रोते ?

—क्यों ?

—अपने यहां तो मोती और शेरू रो-रो के बता देते हैं···भूचाल आ रहा है ! चिड़ियां बता देती हैं···।

—तुझे बताया था न···यह भूचाल नहीं, रेलगाड़ी आ रही है ! तू जाके कुण्डी खटखटा, तो तेरी अम्मा दरवाजा खोलेगी···जा ! जसवन्त ने उसे घर की तरफ हल्के से ढकेलते हुए कहा।

तभी रेल की सीटी साफ सुनाई देने लगी···।

सन्तो ने नये घर की कुण्डी खटखटाई। उसकी अम्मा ने निकल कर उसे छाती से चिपका लिया—तू आ गई···माथे और गालों पर बहुत प्यार किया।

तब तक रेल का इंजन काले हाथी की तरह दूर पर चमका। उसकी अम्मा ने उसे दिखाया—

—देख ! रेल ! रेलगाड़ी !

जसवन्त झण्डिया लेकर स्टेशन की तरफ लपका।

सन्तो ने मां का आंचल पकड़े-पकड़े रेलगाड़ी को आते देखा। जैसे-जैसे रेलगाड़ी पास आती गई···पेड़ों पर बैठे परिन्दे उड़ते हुए पीछे लौटते गए।

तभी न जाने कहां से कोई बैल बौराया हुआ पटरी पर आ गया··· इंजन बाबू ने बहुत सीटी दी, पर अंग्रेज बहादुर की गाड़ी रुकी नहीं। बैल के तीन टुकड़े हो गए।

चीख कर सन्तो ने मां के पेट में अपना मुंह छुपा लिया

तीन टुकड़े तो सन्तो के घर के भी हो गए थे।

बड़ी दादी कहां थी। बड़े बापू और बड़ी अम्मा गांव में थे और वह अपने अम्मा-बाबू के पास यहां।

जब से सन्तो यहां पहुंची तब से यही हैं···

सन्तो का मन नहीं लगता था। उसे रह-रह कर बड़ी दादी, बड़े बापू और बड़ी अम्मा की याद आती थी। घर-गांव की याद सताती थी। यहां तो कुछ था ही नहीं—एक दिन में एक बार गाड़ी आती थी—उसका आना-जाना देख लिया, बाबू को झण्डी हिलाते देख लिया—बस। इंजन बाबू जरूर कुछ नई-नई खबरें लाते थे। पर सन्तो को उन खबरों से कोई

लेना-देना नहीं होता था। उसकी खबरों की दुनिया तो बस घरवालों तक ही सीमित थी। किसे खांसी हो गई है, किसे आज तरकारी अच्छी लगी और गैया ने आज कितना दूध दिया या किस बैल की तबियत ठीक नहीं है।

मन्नो को घर के नाम पर यह गुमटी भी पसन्द नहीं आई थी। यह कोई घर था क्या? यह तो गाय-गोरु के बांधने की जगह थी! इतनी-सी गुमटी में कोई रह सकता है क्या? बड़ी दादी होतीं तो एक पहर नहीं रुकतीं इस गुमटी में, बल्कि वह तो सबको उठाके ले जातीं—वहीं अपने गांव वाले घर। वह किसी को नहीं रहने देतीं यहां।

शुरू-शुरू में जब मन्तो आई थी तब उसे बहुत सूना-सूना लगता था। कहां जाए, क्या करे···दिन भर और रात भर तो अम्मा-बाबू से बतियाया नहीं जा सकता? दिन भी बहुत लम्बे हो गए थे और रातें भी। न कोई कहानी सुनाने वाला था, न कोई हामी भरने वाला। बड़ी दादी जब कहानी सुनाती थीं तब लगातार हामी भरवाती जाती थीं। सन्तो 'हूं' नहीं भरती थी तो वह झकझोर कर जगाती थीं—'सो गई क्या?' लेकिन बड़ी दादी की कहानियां तो बड़ी मज़ेदार होती थीं, सोने या झपकी लगने का सवाल ही नहीं होता था। मन तो यही करता था कि बड़ी दादी सुनाती जाएं और वह सुनती जाए। उसकी अम्मा को कहानियां आती नहीं और बाबू के पास बस रेल की बातें हैं। कभी गांव-गवार से कोई आदमी आता तो बड़ी अम्मा की खबर आ जाती। फसल पर बड़ी अम्मा चने का साग, गन्ने का रस, सिंघाड़े का आटा, सन के फूल या दरारी की कोंसी भिजवा देतीं। गुड़, सत्तू और खटाई आ जाती—बस यही लेना-देना रह गया था गांववाले घर से। दुख-सुख का लेना-देना खत्म-सा हो गया था। अब तो सन्तो को यह भी पता नहीं चलता था कि बड़ी अम्मा के जो चोट लगी थी उसमें कितनी पीर होती है या बड़े बाबू के पैर में जो जोंक चिपट गई थी, उसका घाव भरा या नहीं। हां, इतना ज़रूर होता था कि आते-जाते के हाथों उनकी अम्मा बस्ती का साफ-सफेद नमक, तिल की पट्टी, जलेबी, जीरा और काला नमक बड़ी अम्मा के लिए गांव भिजवा देती थीं।

लेना-देना नहीं होता था। उसकी खबरों की दुनिया तो बस घरवालों तक ही सीमित थी। किसे खांसी हो गई है, किसे आज तरकारी अच्छी लगी और गैया ने आज कितना दूध दिया या किस बैल की तबियत ठीक नहीं है।

मन्नो को घर के नाम पर यह गुमटी भी पसन्द नहीं आई थी। यह कोई घर था क्या? यह तो गाय-गोरु के बांधने की जगह थी! इतनी-सी गुमटी में कोई रह सकता है क्या? बड़ी दादी होती तो एक पहर नहीं रुकती इस गुमटी में, बल्कि वह तो सबको उठाके ले जातीं—वहीं अपने गांव वाले घर। वह किसी को नहीं रहने देतीं यहां।

शुरू-शुरू में जब मन्नो आई थी तब उसे बहुत सूना-सूना लगता था। कहां जाए, क्या करे···दिन भर और रात भर तो अम्मा-बाबू से बतियाया नहीं जा सकता? दिन भी बहुत लम्बे हो गए थे और रातें भी। न कोई कहानी सुनाने वाला था, न कोई हामी भरने वाला। बड़ी दादी जब कहानी सुनाती थीं तब लगातार हामी भरवाती जाती थीं। सन्तो 'हूं' नहीं भरती थी तो वह झकझोर कर जगाती थीं—'सो गई क्या?' लेकिन बड़ी दादी की कहानियां तो बड़ी मजेदार होती थीं, सोने या झपकी लगने का सवाल ही नहीं होता था। मन तो यही करता था कि बड़ी दादी सुनाती जाएं और वह सुनती जाए। उसकी अम्मा को कहानियां आती नहीं और बाबू के पास बस रेल की बातें हैं। कभी गांव-गवार से कोई आदमी आता तो बड़ी अम्मा की खबर आ जाती। फसल पर बड़ी अम्मा चने का साग, गन्ने का रस, सिघाड़े का आटा, सन के फूल या दरारी की कोंसी भिजवा देतीं। गुड़, सत्तू और खटाई आ जाती—बस यही लेना-देना रह गया था गांववाले घर से। दुख-सुख का लेना-देना खत्म-सा हो गया था। अब तो सन्तो को यह भी पता नहीं चलता था कि बड़ी अम्मा के जो चोट लगी थी उसमें कितनी पीर होती है या बड़े बाबू के पैर में जो जोंक चिपट गई थी, उसका घाव भरा या नहीं। हां, इतना जरूर होता था कि आते-जाते के हाथों उसकी अम्मा बस्ती का साफ-सफेद नमक, तिल की पट्टी, जलेबी, जीरा और काला नमक बड़ी अम्मा के लिए गांव भिजवा देती थी।

सन्तो को बार-बार लगता था कि उसकी अम्मा के आस-पास की महक बदलती जा रही है—शायद बाबू कोई महक वाला तेल लाए थे जो अम्मा अपने बालों में चुराके लगाती थी। कभी-कभी सन्तो उतारी हुई धोती सूंघती थी तो उसमें वह गन्ध आती थी। अम्मा रात को चुरा के उठ भी जाती थी, शायद बाबू के पास चली जाती थी—सन्तो को तब बहुत अकेला लगता था। बड़ी दादी तो कहीं उठके नहीं जाती थीं। कभी रात-बिरात उसे प्यास भी लगी और वह उठी तो बड़ी दादी फौरन हांक लगाती थीं—'का हुआ सन्तो बिटिया ? प्यास लगी है। पानी जरा देख के पीना बेटा···।' अब तो सन्तो को प्यास भी लगती है तो नहीं उठती—न जाने कैसा पराया-सा लगता है, अंधेरे में दीवार-किवाड़ भी तो नहीं पहचाने जाते···और फिर इस गुमटी के किवाड़ भी तो बड़े ज़ोर से हाथ पर मारते हैं। इन किवाड़ों में वह घर वाली बात ही नहीं। गांव के घर की मोटी-कच्ची दीवारें तो जाड़े में गरम रहती थीं और गर्मी में ठण्डी—पर गुमटी की दीवारें तो उल्टी ही हैं—जाड़े में ओले की तरह ठण्डी और गर्मी में भट्टी की तरह गरम। यह कैसा घर है ? वहां घर में ओस गिरती थी···यहां तो कोयले का बूरा गिरता है किसकिसाता हुआ और काला। वहां तो यह सिरफ उन दिनों में होता था, जब आंधियां आती थीं···पर यहां तो रोज़ यही हाल होता है—जब रेल आती है। उसी तरह आसमान में अंधियारा छा जाता है जैसे टिड्डी की मार पड़ती थी तो जैसे चारों दिशाएं घू-घू करके गूंजती थीं और आसमान में अंधियारे की काली चादर उड़ती हुई चली आती थी ! हरी फसलें खड़ी होती थीं, तो हाहाकार मच जाता था, न जाने किस गांव पर टिड्डी की मार पड़ जाए···तब गांव के लोग अग्नि-देवता को जगाते थे···जो कुछ सूखा मिलता था, उसे जलाते थे और धुए की दीवार खड़ी कर देते थे, टिड्डी उतरने न पाए···

यही कुछ तो रेल आने पर भी होता है, पर बाबू तो उसे झण्डी हिला-हिलाके रोकते हैं ! कितनी भोंडी सीटी है रेल की ! कुछ समझ में ही नहीं आता कि इंजन किस दुख-दर्द से चिल्लाता है। गांव-घर में गैया रंभाती या पड़रा डकराता तो सब समझ में आता था।

इस गुमटी के आंगन में बस एक ही चीज सन्तो को अच्छी लगती थी—बाबू ने बैंजनी फूलों की एक बेल लगाई थी। अंग्रेज़ बहादुर यह बेल कहीं दूर बंगले से लाया था···इसके तुरही जैसे बैंजनी मुलायम फूल सन्तो को बड़े अच्छे लगते थे। बस, इनमें बास नहीं थी। पराग भी नहीं था। माला बनाओ तो फौरन कुम्हला जाते थे···

इसलिए सन्तो ने एक दिन कह दिया—

—बाबू, हमें गांव भेज दो! हम यहां नहीं रहेंगे।

—क्यों पगली?

—हमारा मन यहां नहीं लगता।

—अब दीवाली आ रही है···अम्मा और बापू भी गांव से यहीं आएंगे इस बार।

—यहां दीवाली कैसे मनाएंगे···दीए रखने की जगह तक नहीं है—न मुंडेर, न छत···दीए का हम तुम्हारे रेल वाले चबूतरे पर जलाएंगे?

पर सन्तो की बात इतने पर ही रुकी रह गई, क्योंकि गठरी-मुठरी बांधकर बड़े बापू और बड़ी अम्मा धनतेरस से एक दिन पहले ही पहुंच गए।

बड़ी अम्मा एक बड़े मजे की बात सुना रही थीं—

—वो अपना हरकू है न···अरे, हरकुआ लुहार! मालूम है का हुआ? चार बरस पहले उसका ब्याह हुआ था न···तुम्हारे इसी रेल-पार वाले गांव में···छह भांवरें तो पड़ गई थीं, सातवीं तो गौने में पड़नी थी···सो ऐसा हुआ कि···

—तो हुआ क्या? जसवन्त ने पूछा था।

पर अम्मा की हंसी नहीं रुक रही थी। बापू भी मन-ही-मन मजा लेकर हंस रहे थे। आखिर अम्मा जी भरके हंस लीं तो आगे बोलीं—

—तब जस्सू तेरी रेल तो थी नहीं···चार बरस पहले···

—हां···

—हरकू जब ब्याहने गया था तब यही सीधा रास्ता जाता था उसकी ससुराल को। इसी सीधे रास्ते से बारात गई थी···करवा चौथ वाले दिन उसका गौना था, सो बैलगाड़ी सजाई गई। नगला का ढोल-

नफीरी वाला बुलाया गया···सुहागिनों के गीत हुए···गांवपार तक सब उसे छोड़ने आईं···पर तेरी रेल ने सब चौपट कर दिया···

—हमारी रेल ने !

—हां रे···हां···और अम्मा फिर हंसने लगी। तो बापू ने टोका—

—अरे आगे बताओ तो···

तो अम्मा हंसते-हंसते आ गए आंसुओं को पोंछकर आगे बोलीं—

—ढोल-नफीरी बजती गई···सुबह-सवेरे सब चले थे। सूरज उगते ···सूरज ढलते बहू को आना था, पर शाम हुई तो देखा हरकुआ लुहार की सजी-सजाई गाडी बिना बहू के लौट आई···सब लोग ताज्जुब में पड़ गए···ई हुआ का ! अइसा तो कभी नहीं हुआ कि ब्याहता का गौना न हो ! पूरा गांव जुड़ गया, तब बात का पता चला। यही कि हरकू सीधे रास्ते चला आ रहा था, साथ में उसका मेंड़ा चाचा था, रस्ते में तेरी रेल पड़ गई तो हरकू और उसका मेंड़ा चाचा हुड़क गए···कहने लगे हम जिस रास्ते बारात लेके आए थे, वह तो यह नहीं है···नहर तक तो रास्ता हमारा पहचाना हुआ है, इसके आगे का रास्ता हमें नहीं मालूम ···जब बारात लेके आए थे, तब यह रेल नहीं पड़ती थी···मेंड़े चाचा हरकू और ढोल-नफीरी वालों के बीच बहुत कहा-सुनी हुई। ढोल वाले मियांजी ने बहुतेरा समझाया कि यही रास्ता तुम्हारी ससुराल को जाता है···पर हरकू नहीं माना। उसका मेंड़ा चाचा बैलगाड़ी हांक के यहीं से लौट गया···बिचारी बहू अपने मैके में बिना गौने के बैठी रह गई···

बताते-बताते अम्मा फिर हंसने लगी—गांव वालों ने कहा भी—हरकू सिड़ी है !

पर हरकू बोला—हम सिड़ी नहीं, लेकिन हम गलत रस्ते नहीं चलते ···जहां तक रस्ता पहचानते थे, वहां तक गए···आगे का रस्ता हमारा पहचाना नहीं था सो लौट आए ! ···बिचारा हरकू···

अम्मा के साथ-साथ सब हंसने लगे थे। हंसते-हंसते पेट में बल पड़ने लगे थे। फिर अम्मा ने आगे बताया—

—ढोल-नफीरी वालों को भी नेग-दस्तूर नहीं मिला। हरकुआ चीखने लगा—अरे, मीयांजी कैसा नेग दस्तूर ? बहू घर में नहीं तब

काहे का दस्तूर !

मियांजी ने अपनी बात रखी—

—भइया हमारे तो फेफड़े फट गए नपीरी फूंकते और हाथ थक गए ढोल पीटते···हमको हमारा दस्तूर मिलना चाहिए !

तो हरकू भड़क गया—अरे, एक ही तरफ से नपीरी बजाते गए थे, वह भी आधे रस्ते···लौटने में तो बजाई नहीं···हम कुछ नहीं देंगे।

मारपीट होते-होते बची। बड़े बूढ़ों ने फैसला करवा दिया—जब बहू आए तो दुगना ले लेना···अरे मियांजी, तुम्हारे ढोल-नपीरी के बिना कोई बहू आज तक किसी घर में आई है का ? सबका घर तुम्हारे बाजों ने बसाया है···हरकू का भी बस जाने दो, तब ले लेना अपना दस्तूर जी भरके !

असल में नपीरी वाले मियांजी पेशे से दर्जी थे—सलूका, फतोई, घाघरा, कुरता, टोपी और पैजामा वही सीते थे—ब्याह-बारात, तीज, त्योहार के ऊपर···जाते-जाते वह हरकू से कह गए थे—

—गौने पर नया पजामा सिलवाएगा न, तब देखना बेटा···नीचे सिलाई नहीं करूंगा···ससुराल पहुंचेगा तो तेरी भद्द पिटेगी ! दुल्हा नंगा आया है !

—अरे, मैं धोती पहन के जाऊंगा !

—देखूंगा बेटा !

कहते हुए मियांजी ढोल वाले को साथ लेके शाम घिरते अपने गांव की तरफ चले गए थे

दूसरी सुबह से धनतेरस की धूम बड़ी अम्मा ने मचा दी—वैसे ही जैसे बड़ी दादी मचाती थीं—

—जस्सू ! आज के दिन जमुना स्नान तो करना होगा !

—अम्मा···जमुना तो आगरे में पड़ती है···रेल से चली चलो ···फर्रुखाबाद में गंगा-स्नान करा लाऊंगा।

—नहीं रे ! आज के दिन नेग तो गंगा-स्नान का है ! गंगाजी

अपनी जगह है, लेकिन अम्मा ने ही तो हमें बताया था कि धनतेरस को जमुनाजी नहाना चाहिए। और फिर शाम घिरते लौटना भी है···धन-तेरस का दिया जलाना है।

···जमुना नहाने गए तो शाम तक लौटना मुश्किल है अम्मा! जसवन्त ने कहा तो यही तय हुआ कि स्नान के लिए जाना ठीक नहीं है। पानी मे जमुना जल छिड़क के सब लोग नहा लेंगे। जमुना का पानी सीधा बहता हुआ पास वाली नहर में आता है।

आखिर सब लोग जमुना वाली नहर पर नहाने चले गए थे, अपने-अपने कपड़े लेकर।

नहर किनारे बड़ी भीड़ थी। हवा ठण्डी हो गई थी कातिक के कारण। नहर किनारे की घास ओस से भीगी थी···कास के फूल खिले हुए थे·· जिनकी लम्बी-लम्बी वालियों के बीच से धुली धोती की तरह ठण्डी हवा बह रही थी। नहर किनारे की भीगी चिकनी पोता मिट्टी की सोंधी गन्ध फूट रही थी। मैदा की तरह चिकनी पोता मिट्टी—नहर का पानी साफ था···उतना ही नीला जैसा जमुना जी का था। पनियारे साप की तरह तेजी से सरकता हुआ···

सन्तो का बाबू जसवन्त नहर के बारे मे शायद कहने ही वाला था कि अंग्रेज बहादुर ने जमुनाजी हमारे घर तक पहुचा दी कि आख के इशारे से बड़े बापू ने उसे हटक दिया था, फिर उसके कान म मुह लगाके बताया था—कहीं तेरी अम्मा ने अंग्रेज की बड़ाई सुन ली तो त्योहार एक तरफ धरा रह जाएगा···नहाना तो दूर···वह इस पानी से आचमन तक नही करेगी।

अभी बापू ने यह कहा था कि पता नही कहा से, किसने अग्रेजो की बात छेड़ दी—शायद पण्डितजी थे जो नहाके अपना जनेऊ सूतते हुए बोले थे—

—अरे भइया···ये इगरेजी नहर है। इनमे जमुनाजी का पानी नही, हम लोग के आसू भरे हैं!

सन्तो ने बड़ी अम्मा की तरफ देखा था—उन्होंने पानी मे उतरते-उतरते अपना पैर रोक लिया था।

—यह पुण्य नहीं, पाप है। वड़ी अम्मा ने कहा था और सब को बिना वे घर लौटा ले जाने के लिए जिद करने लगी थीं। उन्हें किसी

वापू ने मनाया था—

—अरे, इन बातों में क्या रखा है…छोड़ो…अपना त्योहार खराब करो, हमें क्या लेना-देना। किसी का राज हो, कोई कुछ करे…हमें ने बाल-बच्चों का सुख चाहिए…चलो…नहाओ चल के! कहते हुए पू ने अम्मा को मनाया था।

पता नहीं क्या सोचके अम्मा मान गई थीं…तमाम लोग नहा रहे थे, शायद इसीलिए अम्मा ने ज्यादा तकरार नहीं की और न गुस्सा दिखाया—बस, वह बड़बड़ाती रहीं, और वह भी सन्तो से—

—यह पानी देख रही है सन्तो! कितना साफ है! साफ पानी में मेढक नहीं जी पाते। वे मिट्टी में घुस जाते हैं, पर मेढक तभी निकलते हैं, जब पानी गन्दला हो जाता है और तभी टर्राते हैं।

सन्तो बड़ी अम्मा की बात का मतलब नहीं समझ पाई थी। वह उनकी तरफ देखती रह गई…जल्दी-जल्दी बड़ी अम्मा ने नहाया, अम्मा को दो डुबकियां लगवाईं, सन्तो को गदहा-स्नान करवाया और किनारे पर बाहर निकल आईं।

धुर शाम को बड़ी अम्मा ने सिर्फ एक दीया जलाया और कुछ पैसे देकर जस्सू को बर्तन लाने भेज दिया। बाबू चलने लगे तो सन्तो की अम्मा ने अपनी जरूरत बता दी—

—हमारा तवा टूट गया है…

बड़ी अम्मा बिगड़ उठी—

—कैसे घर से आई है निगोड़ी बहू…तेरे घर में कुछ लच्छन हैं कि नहीं…तेरी अम्मा ने इतना भी नहीं बताया कि धनतेरस के दिन लोहे की चीज घर में नहीं लाई जाती? या यहां रेलवई के बाड़े में आकर सब कुछ भूल गई?…

जसवन्त को बार-बार अम्मा का ताने देते रहना खल रहा था, उनका बस नहीं चल रहा था। वह चुपचाप कान दबाए धनतेरस का बर्तन लेने बाजार चला गया था। साथ में बापू भी चल दिए थे।

धनतेरस की रात भर गुमटी मे एक दीया जलता रहा···बड़ी अम्मा ने कई बार उठ-उठकर उसमें तेल भरा। नरक चौदस के लिए क्या-क्या करना है, यह सब बहू को बताया और सन्तो को छाती से लगा के लेट गईं।

आज सन्तो को लगा था—बड़ी अम्मा और बडी दादी मे जैसे कोई फरक नही था। उनके दूध भी उतने ही गुलगुले थे और उनकी छाती में भी वैसी ही गरम-गरम सांसें हिलोरें लेती थी, फनोई से भी वैसी ही गन्ध आती थी···सन्तो को अचरज भी हुआ था कि बडी अम्मा इतनी जल्दी बड़ी दादी में कैसे बदल गईं···वे अब बिल्कुल उन्ही की तरह चलने, उठने-बैठने और बतियाने लगी थीं···उन्ही की तरह घर-परिवार की देख-भाल करने लगी थीं।

बड़ी अम्मा सन्तो को छाती से लगाए लेटी थी तो बार-बार सन्तो के छितराए बाल उनके नथुनो मे घुस जाते थे···आखिर उसके सिर को सूंघकर बड़ी अम्मा ने पूछा था—

—कब से तूने बाल नही धोए ?

—बहुत दिन हो गए बडी अम्मा !

—तेरी अम्मा कुछ नहीं करती···लगता है जुएं भी पड़ गई हैं··· तभी कबर-कबर खुजाती रहती है···कल नरक चौदस है, मैं धो दूंगी···

—बडी अम्मा कहानी सुनाओ न···सन्तो ने कहा था तो बड़ी अम्मा ने गहरी सांस लेकर इतना ही कहा था—

—चल सुन ! इस दीए की कहानी सुनाती हूं···दोनों दिन—धन-तेरस और नरक चौदस को घर मे एक-एक दीया जलाया जाता है बेटी··· यह दीया पितरों और बडों के लिए होता है···न जाने कब, किसकी अ··· इस घर मे लौट आए···उन्हे अंधेरे में तकलीफ न हो, इसलि··· यह दीया जलेगा···अम्मा लौट आती तो इस देहरी पर आज··· मुकारथ हो जाता ··

और तभी गुमटी के टीन वाले दरवाज़े पर किसी ने···

इस आधी रात में भला कौन होगा ? बड़ी अम्मा के कान खड़े हो गए। उन्होंने वहीं से लेटे-लेटे पुकारा—

—जस्सू ! देख आधी रात कौन आया है···कोई रास्ता तो नहीं भटक गया !

भुनभुनाता हुआ जसवन्त उठा था, आंखों को मलते हुए उसने दरवाजा खोल कर पूछा था—कौन है ?

—मैं जंगल का हरकारा हूं ! कुछ जरूरी बात है !

—क्या है ?

—तुम्हारे घर का कोई खो गया है ?

—नहीं तो ! जसवन्त ने कहा, तब तक बड़ी अम्मा दरवाज़े पर आ गईं, एकदम चिहुंक कर बोलीं—

—हां, हां···खो गया है···इसे इतनी भी याद नहीं ! हमारी अम्मा खो गई हैं भइया·· एक रात वह न जाने कहां चली गईं···बिना कुछ बताए···

—उन्हीं की बात कर रहा हूं ! लगता है वही हैं !

—कहां ?

—जंगल में !

—जंगल में !

—हां···काफी दिन हुए मेरा निकलना जंगल से नहीं हो पाया। अब दीवाली पर घर जा रहा था तो रात सराय में रुका था। वहां पराठे वाले खरगे की दूकान पर बात चल रही थी कि रेलवई के बाबू की दादी घर छोड़कर अन्तर्धान हो गईं···तो हमारा माथा ठनका···हमें सवेरे-सवेरे उठके सात कोस जाना था, इसलिए अभी चला आया, शायद सवेरे वखत न मिले···

—तो बताओ न भइया ? कौन-से जंगल में हैं वो···कहां हैं ? बड़ी अम्मा ने एकदम पूछा था। सभी जाग गए थे और खड़े थे।

तब जंगल के उस हरकारे ने बताया था—

—यह जो पश्चिम वाला जंगल है न···उसी में एक मठिया है···हम उसी जंगल के हरकारे हैं···कई बार हमने उस घने जंगल में एक बूढ़ी मां

को देखा, उनसे बहुत बार बात करने का जतन किया, पर वह बोली नहीं। हमने समझा कोई साधुनी हैं "गूंगी हैं "पर एक दिन हमने देखा—वह जंगली जानवरों से कुछ बोल रही थीं!

—तब तो जरूर हमारी बड़ी दादी हैं! सन्तो एकदम चीख पड़ी थी।

सब लोग एक-दूसरे का मुंह देखते रह गए थे। बड़ी अम्मा ने फौरन कहा था—सन्तो दीए में तेल और डाल दे बेटा"'बाती भी ऊंची कर दे! "'कहते हुए पता नहीं क्यों उनकी आखों में आंसू आ गए थे, फिर अपने को वह नहीं रोक पाई थीं और हरकारे से बोली थी—

—भइया"'हमें तुम रास्ता बता दो"'हम अभी जाएंगे उन्हें लेने।

—यह ठीक नहीं होगा"'जंगल खतरनाक है। जंगली जानवरों का डर भी है"'इस बखत तो जाना किसी हाल में ठीक नहीं है"'

—तो हम सवेरे चले जाएंगे!

—तुम लोग अकेले नहीं पहुंच पाओगे"'ऐसा करो"'मुझे दीवाली बाद लौटना है तो मेरे साथ चले चलना तुम लोग।

—नहीं भैया! इतना इन्तजार नहीं हो पाएगा। तुम हमें बता दो"' हम उन्हें खोज लाएंगे"'बड़ी अम्मा को अब एक पल का भी सबर नहीं था।

सबर तो किसी को भी नहीं था, पर हरकारा जाने को तैयार नहीं हो रहा था, क्योंकि उसे त्योहार पर घर जाना था। बड़ी अम्मा ने बहुत मनाया—

—भइया हमारे! अब हमारी दीवाली तो तभी होगी जब हमारी अम्मा घर आ जाएंगी! हम तुम्हारे पैर पड़ती हैं, हमें उन तक पहुंचा दो। बड़ी अम्मा जैसे झोली फैला के भीख मागने लगी थीं।

आखिर हरकारे का मन पसीज गया था—

—ठीक है"'आप लोग की दीवाली हो जाए तो हमें सुख ही मिलेगा "सवेरे हम साथ चलेंगे।

सुनते ही बड़ी अम्मा ने हरकारे को आशीषों से भर दिया था—

—भइया! तुम तो हमारे भगवान बनके आए हो"'तुम यहीं

आराम कर लो···आओ···कहती बड़ी अम्मा हरकारे को भीतर ले आई थीं।

तभी ठण्डी हवा का एक झोंका आया था और दीए की बाती भभक कर थरथराई थी···।

अम्मा जब आईं, तब भी वह कोने में दुबकी बैठी थी। जसवन्त चला गया था, लेकिन उसकी हिम्मत नहीं थी कि उठ जाए। उसके बालों में बहुत खुजली हो रही थी, उन्हें वह खुजला रही थी। बड़ी दादी ने तब अम्मा को हुकुम दिया था—

—देख रही हो! तब से बैठी सर में कुबुर-कुबुर कर रही है···तू इसके तेल नहीं लगाती! आज लगा दे इसके बालों में, कल बेसन से धोके इसकी जुएं साफ कर दे·· मेरी कंघी ले लेना।

बड़ी दादी का कहना टाला नहीं जा सकता था। रात को ही अम्मा ने उसके बड़े-बड़े बालों को सहराते हुए गरी का तेल लगाया था···वह सर खोल के बैठ गई थी, तो उन्होंने डांटा भी था—

—कुछ हया-सरम भी सीख ले···अब तू बड़ी हो गई है।

—तो सर कैसे ढांकूं··· बालों में तुम तेल लगा रही हो अम्मा···

—ऐसे! कहकर उन्होंने उसकी धोती का पल्ला उसके हाथों में थमा दिया था और बताया था कि पल्ले को आंखों पर तब तक लगाए रहे, जब तक सर खुला रहे। फिर उसके बालों को सहराते हुए बोली थीं—

—कितने सुन्दर बाल हैं तेरे···इनकी देखभाल कर···हर एकादशी को याद दिला दिया कर, मैं धोया करूंगी तेरे बाल।

अम्मा ने बालों में तेल लगाया तो सर हल्का हुआ।

रात पूरी तरह उतर आई थी—

उसे अब भी लग रहा था, बड़ी दादी ने 'उनके' आंख झपकाने पर कान-वान तो खींच दिए हैं, पर हो सकता है 'उनकी' आंख में कुछ हो गया हो।

जब सब लेट गए थे तब वह दबे पांव उठी थी। बरोसी में आग तो हर समय दबी रहती थी। उसने गन्धक की सिरकटिया से लौ जगाई थी और चौके का किवाड़ उढका लिया था, कहीं रोशनी बाहर न चली जाए ···फिर उसने चूल्हे पर तवा चढ़ाकर मैदे की पुल्टिस बनाई थी और एक चीट में रखके दबे पांव उस कोठरी में गई थी जहां जसवन्त बापू के साथ सोता था।

अंधेरे मे अच्छी तरह पहचान के उसने जसवन्त के पैर के अंगूठे को छुआ था। जसवन्त सुबह-सुबह तक चौकन्ना सोता था। अंगूठे पर छुअन होते ही वह समझ गया था। दोहर से सिर निकालकर उसने देखा था —अंधेरा गहरा था···पर अंधेरे में कितना उजाला होता है, यह उन दोनों की आखों को पता था। इस उजाले की परतीत कितनी गहरी थी··· जो उन्हें मिलता था···जब, जिस रात, जो भी बखत मिल जाए।

उस अंधेरे मे सब कुछ दिखाई पड़ रहा था। जसवन्त ने इशारे से उससे पूछा था—

—क्या है ? वह हमेशा यही पूछता था।

—पुल्टिस है ! उसने हथेली बदलते हुए गरम पुल्टिस उसे दिखाई थी।

—तू ऊपर चल···छत पर···मैं अभी मौका देखकर आता हूं ··देख लू···बापू ठीक से सो गए हैं या नहीं ! यह सब उसने इशारे से ही कहा था और वह सब कुछ समझ गई थी।

उसने वहीं अंधेरे में, कोठरी के बाहर बैठकर अपने पैरों में पहनी पायलें निकाली थी, उनके रौने चिड़ियों के बच्चो की तरह झुन-झुन-चुन-चुन करते थे। छत पे जाएगी तो सीढ़ियों पर बहुत आवाज होगी।

उसने सीढ़ियों के पास की ठण्डी दीवार से चिपककर घर भर की आवाजों की सुन-गुन ली थी।

बड़ी दादी की कोठरी से बार-बार मोटी दोहर सरकने की आवाज आ रही थी। लगता था उनके पैरों मे पटकन हो रही थी। वे बार-बार पैर बदल रही थी। अम्मा आज उसके तेल लगाने लगी थी, इसलिए उन्हें उनके पैर दबाने का बखत नहीं मिला। अम्मा की कोठरी से कभी-कभी

चूड़ियों की आवाज़ आती थी—इनकी कांच की चूड़ियां लाख के कड़े से टकराती थीं। बापू तो इस कोठरी में लेटे सो रहे थे—ज़रूर अम्मा को मच्छर परेशान कर रहे हैं···आती बरसात से बचाने के लिए उन्होंने कपड़ों को उठाकर अपनी कोठरी में रखवा लिया है···वहीं से मच्छर उड़ रहे होंगे और अम्मा को परेशान कर रहे होंगे···चौके में खटर-पटर हो रही थी, फिर हल्के मखमली पंजों की खामोश आवाज़—ज़रूर बिल्ली और बिलौटा घूम रहे होंगे।

गोशाला से बड़ी लम्बी-लम्बी सांसें आ रही थीं। पूंछ झटकने और खुर पटकने की आवाज़ें और बखारी से चूहों के दौड़ने की लगातार सर-सराहट आ रही थी·· चुखरियां भी चूं-चूं करती दौड़ रही थीं···ये आवाज़ें तभी बन्द होंगी, जब बिल्ली चौके से बखारी की तरफ जाएगी। पानी की बाल्टियों के पास से प्यासे बर्रों की गुनगुनाहट आ रही थी। रात को इन्हें बहुत प्यास लगती है···और बापू की कोठरी से 'इनके' उठ के आने की एक-एक आवाज़ आ रही थी। अब इन्होंने घुटनों से दोहर सरकाई···अब नीचे की बिछावन सरकी···अब ये बैठ गए···यह बापू का खर्राटा आया···इन्होंने सांस रोककर देखा···अब ये चले। ओह, बाबा रे···इनका पैर बापू की तमाखू की डिबिया से लगा···डिबिया घूमती-चकराती किवाड़े से लगी···पर अंधेरे में तो सब कुछ दिखाई पड़ता है। इन्होंने डिबिया उठा के बापू के सिरहाने रखी···बापू का एक और खर्राटा आया। पैताने शायद जगह नहीं है·· सो ये बापू के सिरहाने से निकले हैं।

जैसे ही इनका हलका हाथ किवाड़े पर पड़ा—किवाड़े की चूल बोली···कल इसकी चूल में मीठा तेल डाल देगी। बहुत चरमराती है···सब भेद खोल देगी किसी दिन यह चूल···दोहरी पर जैसे ही उनके मुलायम पैरों की आहट हुई तो उसने अपना पैर सीढ़ियों पर रखा और धोती की सरसराहट के सहारे-सहारे वह भी खिंचे चले आए—सीढ़ियों में बहुत अंधेरा था···

छत पर जाती गर्मियों की चांदनी फैली थी···सूखी घास मुंडेरों पर मूंछों की तरह उगी थी। हवा में धोए कपड़े जैसी नमी थी और छत की मिट्टी में चांदी के गहनों जैसी हल्की ठण्डक···

दोनों छिपकर छत की टूटी दीवार की छाया में बैठ गए थे, जहां चांदनी की छिटकन नहीं थी।

—यह क्या है ?

—पुल्टिस ! तुम्हारे लिए···इत्ती देर लगा दी, ठण्डी हो गई···

—ये काहे को बनाई थी ?

—तुम्हें आंखों में कुछ हो गया है न···!

—तू इतना भी नहीं समझती ! फेंक पुल्टिस···आज गुस्सा पड़वा दिया न दादी से। काहे को बोली थी कि मैं आंख मारता हूं !

—हमें कहां मालूम था···पहली दफा तुमने किया था···इससे होता क्या है ?

—समझा कर·· कभी-कभी मन करता है···तुम्हें देखने का···।

—तो ऐसे देखा जाता है ?

—तो और कैसे देखें दिन में ! बोल ! इधर पास आ न···कहते हुए जसवन्त ने पास खींचा तो कमर में उसकी पायलें हल्के से खनखना के रह गईं···।

—ये उतार दी !

—हां···बजती थी।

—पहन ले···सूने पैर अच्छे नहीं लगते···कहते हुए उसने उसकी कमर से पायलें निकाल के पहनाने को पैर पकड़ा तो उसने एकदम पैर खींच लिया।

—क्या करते हो ! मैं पहन लूंगी···।

—मैं पहना देता हूं।

—नहीं···पैरों को हाथ मत लगाओ। मुझे पाप पड़ता है···। कहते हुए उसने अपने-आप पायलें पहन ली थीं···फिर जसवन्त उसे चांदनी में सरका लाया था···।

—नहीं···इधर ठीक है···।

—चांदनी में···।

तभी हल्की हवा के झोंके के साथ मस्जिद के किनारे लगी मेहदी की महक आई थी। इन दिनों मेहदी खूब फली थी···।

जसवन्त ने उसे बालों पर प्यार किया तो तेल होठों पर लग गया। बांह ने रगड़ के उसने तेल पोंछा। फिर उसके हाथ उसके तन पर जगह-जगह आग सुलगाने लगे ।

नीचे चांदी की तरह हल्की-ठण्डी मिट्टी···छिटकी चांदनी और मेंहदी की महक···उसकी सांसें लू की तरह गरम होती गई···बालों का सारा तेल जसवन्त के कुर्ते ने सोख लिया···सारी मिट्टी उसके कपड़ों और बालों ने लपेट ली···।

पर···धोती की गांठ तो खुल गई थी···फतोई के बटन भी हुज्जत करके मान गए थे···पर धोती के नीचे वाले लहंगे की गांठ का नाड़ा अकड़ गया था···उसने जल्दी में उलटा सिरा खींच दिया था, बड़ी टेढ़ी गांठ पड़ गई थी···जसवन्त ने उसके पेट पर दांतों से वह टेढ़ी गांठ खोलने की भरसक कोशिश की तो पेट पर होती गुदगुदी से वह सीधी लेट ही नही पाई···।

—एक तो !

—गुदगुदी होती है···।

—खोलने तो दे···।

—और कस गई···।

—हंसती है तो पेट फूलता है, उसीसे···

— मैं पिचकाती हूं ! कहकर उसने सांस भीतर करके रोक ली थी। उसके दांतो मे उसे अजीब-सी सिहरन हो रही थी···।

— गांठ खोलो न···पेट पर क्यों दांत लगाते हो···?

—यह नहीं खुलती ! अब !

— हमें क्या मालूम···।

लेकिन लू के झोंके और तेज होते जा रहे थे···मेंहदी की महक गहरी हो गई थी और चांदनी भी खूब छिटक गई थी। और तब जसवन्त की समझ में पहली बार कुछ आया—

— नहीं खुलती तो रहने दे !

—तब···।

—ऐसे···।

उसके पैरों की पायलों के रौने एकदम झनझना उठे थे···चांदनी भरा आसमान नीचे उतर कर छत पर बैठ गया था। मेंहदी के महकते पौधों ने उन्हें घेर लिया था···

तभी बसेरों से निकलकर पंछियों की एक पांत आकाश में निकली थी·· चांदनी को बुझाती···उनके परों की हवा उन दोनों तक आई थी।

—लगता है सवेरा हो गया···तू जा···।

—नहीं·· पहले तुम जाओ।

—कहीं कोई जाग गया तो!

—तो हमें क्या मालूम···।

तभी नीचे के बरोठे में कुछ आवाज आई और वह एकदम उठकर सीढ़ियों से दौड़ गई···वहां से आहट लेती धीरे-धीरे नीचे उतर गई··· फिर आहट ली···।

तभी वहीं दादी की आवाज आई—

—छोटी बहू! का कर रही है?

—कुछ नाहीं दादी···सोचा पानी भर दूं। कहकर उसने कच्चे कुएं की जगत पर पैर टिका के रस्सी गड़ारी से खोल दी। कच्ची दीवार से भद्-भद् टकराता हुआ डोल झम्म से पानी की सतह पर गिर पड़ा। वह डोल को झटके देकर पानी भरने लगी तो गड़ारी चीखती रही··· चिच्-चिच्-चुच-चुच···हाय वह तो इनसे कहना भी भूल गई कि किवाड़े की चूल में किसी बखत मीठा तेल डाल देना—बहुत चरमराती है, किसी रात पकड़वा देगी···।

तभी डोल खींचते हुए उसने जगत पर रखे अपने पैर को देखा था— एक पायल छत पर छूट गई थी···अभी बड़ी अम्मा सूरज भगवान को पानी चढ़ाने छत पर जाएंगी तो पकड़ी जाएगी···उसका मन धक् से रह गया था।

तभी उसके साथ चलती अम्मा ने बच्चों की तरह किलकारी भरके कहा था—

— देख मन्नो! नीलकण्ठ·· वह भी सीधे हाथ पे! आज तो सारे सगुन सीधे हो रहे हैं!

रेलवई के तार पर बैठा नीलकण्ठ एकदम उड़ता हुआ जंगल की तरफ चला गया था···उसका एक पर सूखी पत्ती की तरह चकराता हुआ दूर गिरा था।

—सन्तो···उठा ला।

सन्तो ने लाकर नीलकण्ठ का पर अपनी बड़ी अम्मा को दे दिया था। उन्होंने बड़े जतन से उसे चूम कर बहू वाले झोले में रख दिया था।

तभी ईसन नदी आ गई थी। पतेल और कांसे की झाड़ियां लहरा रही थीं। कातिक की ठण्डी में रात और भी ठण्डी थी···बगुलों की पांतें छिछले पानी में सफेद साधुओं की तरह एक टांग पर खड़ी थीं···पानी निर्मल था···

तभी हरकारे ने कहा—

—डेढ़ कोस पूरा हुआ···पानी निर्मल है···हाथ-मुंह धो के फिर आगे चलते हैं!

ईसन नदी का निर्मल पानी देखकर अम्मा का भी मन डोल गया था···

—बहू आ···सन्तो आ जा···

तीनों एक तरफ किनारे से उतर गई थीं···रेती के बाद चिकनी मिट्टी में उनके पैर गड़ गए थे···सन्तो अचकचाई तो बड़ी अम्मा ने डांटा।

—माटी में खूब पैर गड़ाए रख···रस्ते का जो कील-कांटा लगा होगा, सबका दरद यह माटी खींच लेती है···गड़ाए रख···पैर एकदम हलके हो जाएंगे···अभी बहुत दूर जाना है···

और जब वह बालों को ऊपर कर-करके ठण्डे निर्मल पानी से मुंह धोने लगी थी तो अम्मा ने उसे बताया था—

—बहू एक बात और सुन ले।

—का अम्मा!

—सावन-भादों में कभी नद्दी के पानी को हाथ मत लगाना··· कभी नद्दी में मत उतरना···

—काहे अम्मा?

—उन दिनों नद्दी कपड़ों-से होती हैं बेटा···अपवित्र! कोई मछुआ

भी तब नदी में नहीं उतरता ! याद रखना मेरी बातें···

—अम्मा !

—का ?

—तुम्हें इतनी बातें कैसे पता हैं ?

—तेरे निखिद्ध घर की तरह नहीं था मेरा घर·· हमारी अम्मा ने बताया था···फिर सब कुछ तेरी बड़ी अम्मा ने बताया हियां !

अपने पल्ले से मुंह पोंछकर उन्होंने मिट्टी में गड़े अपने पैर निकाले—

—सब दरद-पीर जाती रही ! अपनी ईसन नदी की माटी का यही परताप है !

—और नदियों की माटी का नहीं ? हमारी बस्ती में भी एक नदी है अम्मा ! उसने ऐसे ही पूछा था।

—हर नदी अपनों की दुख-पीर हरती है···

—तो मेरी नदी तो दोनों हुईं···क्यों अम्मा ?

—नाहीं बेटा···जिस बस्ती बहू जाती है उसी बस्ती की नदी उसकी हो जाती है···बिना कहे, बिना बताये···उसके मायके की नदी उसकी भैजी के हिस्से पड़ती है···

अभी अम्मा यह बता ही रही थी कि उनकी निगाह मर्दों की तरफ गई। वहां दूर किनारे पर आराम से बापू और जसवन्त बैठे बतिया रहे थे। हरकारा नहीं दिखाई दे रहा था, अम्मा एकदम चौंक गईं। वहीं से उन्होंने आवाज लगाई—

—अरे···वो हरकारा भइया कहां गया !

—दिशा-मैदान !

—इसी वखत लगी थी ! अम्मा झुंझला गईं—तब तक हम आगे चलते हैं···वह आ जाएंगे।

—सबर करो न···

तभी दूर पतेलों के झुरमुट में से हरकारा आता दिखाई दिया। अम्मा ने राहत की सांस ली।

काफिला फिर चल दिया—जंगल की राह पर।

आखिर जब तक सूरज ऊपर सर पर आया—काफिला जंगल की चढ़ाई पर था। रास्ते में वह नाला भी पड़ा था—जहां बड़े बाबा ने अपना घोड़ा महाराज साहब को दिया था। वह चट्टान भी थी जिस पर गिर कर महाराजा साहब के घोड़े की छाती फट गई थी।

उस जगह पर बापू के पैर ठिठक गए थे। उन्होंने सबको रोककर कहा था—

—यही अपना तीरथ है! बताते-बताते बापू बुरी तरह रो पड़े थे, उनकी हिचकियां और आंसू रुक ही नहीं रहे थे। तब अम्मा उन्हें बच्चों की तरह समेट कर एक पेड़ के पीछे ले गई थीं और उन्हें छाती से चिपका कर किसी तरह चुप कराया था।

उन्हें तो अम्मा ने चुप करा लिया था, पर खुद रो पड़ी थीं, अब किसी की समझ में नहीं आया था कि क्या करे। तब बापू ने बहू को इशारा किया था कि अपनी अम्मा को सम्भाले।

आखिर तो वहां से चलना था। जल्दी से जल्दी जंगल में पहुंचना था। अम्मा ने बहू के झोले से एक बड़ा दिया निकाला था···उसमें घी डाला था और ऊपर चमकते सूरज की चमक से मुकाबला करते हुए बड़े बाबा की याद में वह दीया बाल दिया था।

दिये की लौ से रोशनी और बढ़ गई थी—चारों तरफ जैसे धरती पर एक सूरज और उग आया हो। चलते-चलते सबने माथा झुकाकर उस स्थान को प्रणाम किया था। अम्मा ने आंचल पसार कर बड़े-बाबा की आत्मा से कोई आशीर्वाद चुपचाप मांगा था—फिर वहां की मिट्टी चुटकी में भर के अपनी और बहू की मांग में सुहाग-सिन्दूर की तरह लगा ली थी।

जंगल किनारे तक पहुंचते सबकी आंखें गीली होती और सूखती रहीं थीं···पर जंगल की चढ़ाई पर पहुंचते ही बड़ी दादी से मिलने और उन्हें देखने की खुशी में सबकी आंखें एकदम पारे की तरह चमकने लगी थीं।

आखिर जंगल की बड़ी गहन डगर से हरकारा उन्हें ले गया था। पहाड़ियां···नाले पार करना···हरेक जंगली जानवर की आवाज़ों की पहचान बताता···

—बहुत जानवर हैं यहां?

—बहुत! सब तरह के···आखिर जंगल है।

—तो बड़ी दादी कैसे रहती हैं यहां?

—यही तो अचरज है! हमारी बात और है। हम तो वनवासी हैं···हमें तो सब जानते-पहचानते हैं···पर तुम्हारी बड़ी अम्मा में न जाने कैसा तेज है कि वे वन-देवी बनके रह रही हैं! हरकारा बतियाता हुआ अब बहुत तेज़ी से चल रहा था—आओ न तुम लोग!

—रस्ता ऊबड़-खाबड़ है···धीरे चलो भइया! अम्मा ने कहा था।

—वाहे! मैदान में तो तुम बहुत तेज़ चल रही थीं···अब का हुआ?

—ये तुम्हारी बस्ती है! कहकर अम्मा ने अपनी चाल तेज़ की।

और तब एक पहाड़ी पार करके घाटी में कुछ पुरानी दीवारें चमकीं —टूटी-फूटी खण्डहर···

झाड़ियों और पेड़ों के बीच में एक चबूतरे पर बड़ी दादी की धोती चमकी—दो टहनियों में बंधी सूखती हुई। जंगली जानवरों की कुछ आवाज़ें गूंजीं!

सब दौड़ पड़े—

फिर ठिठक गए। हरकारे ने उन्हें रोका था।

—धीरे से!

सामने खुले बाल खोले, आंखें बन्द किए बड़ी दादी ध्यान लगाए बैठी थीं—वन देवी की तरह···और तीन-चार जंगली जानवर उनके आसपास पत्थर की मूरत की तरह बैठे थे।

23

बड़ी दादी को देखते ही सब ठिठक गए थे। ऊपर की सांस

की नीचे रह गई थी। यह कैसा रहस्य था ! किसी को परतीत नहीं
रही थी·· यह कोई सपना तो नहीं था, जो हरएक की आंखें अलग-
लग देख रही थी ! सबने एक-एक बार सबकी तरफ देखा था, फिर
ड़ी दादी की तरफ देखा था, फिर एक-एक बार दुबारा सबने मिलकर
खा था। सिरफ हरकारे की आंखों में अचरज नहीं था।

वड़ी दादी सफेद पत्थर की मूरत की तरह निश्चल वैठी थीं, उनके
चांदी के तारों जैसे बाल हल्की हवा में सलमा और गोटे के धागों की तरह
झिलमिला रहे थे। उनकी आंखें बन्द थीं—जैसे वह ध्यान में मग्न हों।

और पास ही वैठा था—पत्थर की मूरत की तरह एक भालू···
कभी उन्हें, कभी इधर-उधर देखता हुआ। रह-रहके उसे खुजली होती
तो वह पंजा उठाकर अपनी थूथन को खुजला लेता था। उसी के पास
खड़ा था बारहसिंघा—अपनी पनीली काजल लगी आंखों से इधर-उधर
देखता हुआ।

तभी सन्तो की सांस अटक गई थी। भालू तो अपना लगता था।
कभी-कभी भालू नाचने गांव-बस्ती में आता था, वैसे भी उसने देखा था—
जब कभी जाड़े के दिनों में भालू खेतों में शकरकन्द या आलू खोदकर खाने
आता था···खेतीहर लहकाते थे तो भालू गीली मिट्टी पोंछता जंगल की
तरफ भाग जाता था। तब बच्चे बहुत मज़ा लेते थे···भालू भागता भी मज़े
मे था। मुड़कर देखता भी नहीं था। सो, भालू से तो सन्तो को डर नहीं
लगा था। बारहसिंघे के सींग तो उसे अजीब लगे थे, पर उसकी आंखों में
बड़ी दादी की आंखों जैसा ही पनीलापन था। आंखों के भीतर मोम
जैसी ममता देख कर सन्तो का मन सिरा गया था। पर सन्तो की सांस
अटकी थी—चीते को देखकर! बड़ी दादी के पीछे वाले झुरमुट की
छाया में बैठे चीते पर जैसे ही आंखें टिकीं—उसका छोटा-सा दिल ध
से करके रह गया था ! चीता उसने देखा था। एक तो मन्दिर के बा
वाले चबूतरे पर दो पत्थर के चीते बैठे थे—बापू ने बताया था, वे
चीते लल्लन चाचा के बाबा ने बनाए थे···लल्लन के बाबा की आंखों
पत्थर की किर्च घुस गई थी, तभी से वो अन्धे हो गए थे।

मन्दिर के उन चीतों से तो सन्तो की खेल-खेल वाली दोस्ती थी··· बल्कि उनके मुंह में तो वह अपने कनेर के फिए भी रखती थी—दोस्तों-हमजोलियों में छुपा के रखने के लिए। उन दोनों चीतों ने कभी मुंह बन्द नहीं किया—पुन्नी ने जब एक कान भी तोड़ लिया था, तब भी चीता गुर्राया नहीं था···पर दूसरी बार तो सन्तो ने जो चीता देखा था—वह बहुत डरावना था।

उस चीते को गाव वालों ने मिल कर मारा था। उस चीते के कारण तो पूरा गाव एक बार समसान बन गया था। जब देखो तब किसी का पाड़ा, बछड़ा, बकरी या भेड खींचके ले जाता था। ऐसी गर्दन पकड़ता था कि पाड़े या बछड़े की आवाज एक बार ही सुनाई पड़ती थी—फिर तो उसकी छिछला-लाश ही कहीं पड़ी मिलती थी। दूर-दूर तक तब सन्नाटा छा गया था। कई बन्दूक वाले आए थे···पर तब चीता आता ही नहीं था। आखिर फिर गाव वालों ने जगह-जगह कीचड़ से भरे गहरे गड्ढे बनाए थे ··हर गड्ढे पर पाड़ा बाधा गया था और आखिर मे चीता फंस गया था। एक पाड़े को मार कर खींचता हुआ जैसे वह चला था—कीचड भरे गहरे गड्ढे मे गिर गया था। कीचड बहुत गहरा था। चीते की कमर कीचड ने पकड ली थी। काका रामनरायन ने कहा भी था—चीते की सारी ताकत उसकी कमर मे होती है और पजों में। जब चीते को कीचड़ ने पकड लिया था तब गाव वाले हाका लगाते गडासे, फरसे, बल्लमें और लाठियां लेकर निकल पड़े थे। लेकिन गड्ढे तक जाने की हिम्मत किसी की नहीं हो रही थी। धीरे-धीरे गोल बना कर सब गड्ढे के इर्द-गिर्द घिरते गए थे। गोल छोटा होता गया था। कुछ लोग पास वाले पेड़ पर चढ गए थे। उसी पेड से रुस्तम मामा ने निशाना बाध कर पहला गंडासा चीते पर फेंका था। रुस्तम का वह घूमा हुआ गडासा चीते के पुट्ठे पर लगा था—चीता दहाड़ा था तो भगदड मच गई थी। चीता उछला भी था—पर उसकी कमर कीचड ने पकड रखी थी ‍सो वह गड्ढे की चिकनी मिट्टी से फिर नीचे सरक पड़ा था। आखिर पेड पर चढ़े रुस्तम मामा ने नीचे से एक भाला लेकर अपनी एक आंख बन्द करके सच्चा निशाना साधा था···चीता फिर दहाड़ा था—तब तक चन्नू ने

अपना फरसा भी चला दिया था···चीता तब न जाने कैसे धरती चीर के उछला था और अपने पंजे से चन्नू की कनपटी पर वार करता उनका कान उखाड़ ले गया था। चन्नू लहूलुहान हो गए थे—तब से उन्हें कोई कनफटा नहीं कहता सब उन्हें चीता-चन्नू पुकारते हैं···। आखिर उन्होंने चीते को मारने की हिम्मत दिखाई थी और तभी से गांव-बस्ती में रुस्तम मामा का नाम भी बदलकर रुस्तम-चीता पड़ गया था। रुस्तम मामा बस्ती भर के जाने-माने पहलवान थे···मस्जिद के पीछे वाले अखाड़े में वे रोज़ कड़वा तेल लगाके कसरत करते थे और गांव के लड़कों को जोड़ सिखाया करते थे।

असल में चीते को रुस्तम मामा ने बहुत घायल कर दिया था, फिर तो सभी गांव वालों ने लाठियों से पटकोर-पटकोर कर चीते की जान ही ले ली थी।

रस्सियों के फन्दे डाल-डालकर चीते की लाश खींच के निकाली गई थी···और जब खुले मैदान में उस चीते को डाला गया था तब दूर-दूर से लोग देखने आए थे। गांव की सब बहुएं एक साथ पहली बार निकली थीं—उस दिन डरावने चीते को देखने के लिए।

तब न जाने कैसे जिला कचहरी में खबर हो गई थी और वहां से कचहरी का गोरा बंदूक लेके आया था! तब बड़ी दादी बहुत हंसी थीं—

—मरे चीते को मारने आया है लंगूर! बन्दूक ले के।

बड़ी दादी ने उस गोरे को लंगूर कहा था और बड़ी देर तक हंसती रही थीं, फिर दूर से उसे देखते हुए बोली थीं—

—असली चीता तो यह लंगूर है।

तब सन्नो बहुत छोटी थी। बड़ी दादी की बात नहीं समझी थी। आज तो कुछ-कुछ समझती है।

पर बड़ी दादी को उसी चीते के पास बैठा देखकर सन्नो सहम गई थी। वही डरावना चीता फिर जाग गया था क्या? और बड़ी दादी ने उसे हिला-मिला लिया है क्या?

अभी सन्नो की सांसें ठीक भी नहीं हुई थीं कि हरकारे ने कहा—आओ!

बड़ी दादी जितनी पास दिखाई देती थीं, वह जगह उतनी पास थी नहीं। बीच में एक छिछले पानी का नाला भी था और चट्टानें थीं।

सब सहमे से आगे बढ़ने लगे तो चीते ने देखा था। हरकारे ने हाथ के इशारे से हटका था, तो सब रुक गए थे। आखिर चीता हल्के से गुर्राया था और तब बड़ी दादी की आंखें खुली थीं···लेकिन बड़ी दादी ने अपने परिवार को नहीं देखा था—उन्होंने अपने नये परिवार को देखा था।

तभी चीता उठकर—अपनी रीढ़ सीधी करता पीछे वाली घनी झाड़ियों के झुरमुट में अलोप हो गया था। सच पूछो तो तब सबकी जान में जान आई थी···कोई बोल तो कुछ नहीं रहा था, पर डरे हुए सभी थे। हो सकता है हरकारा डरा हुआ न हो।

तब आगे बढ़ते हुए बड़ी अम्मा ने कहा था—

—अम्मा ने हम सब से मुंह मोड़ के अपना परिवार ही बदल लिया। कितना दुख समाया होगा अम्मा के मन में ··तभी तो ऐसा किया, नहीं तो किसी तीरथ-स्थान में जाके धूनि रमा देतीं। हिया आना पड़ा उन्हें।

तब तक भालू भी गुर-गुर करता घने झुरमुट की तरफ चला गया—और अपनी भोली-भाली आंखों से चकराया हुआ इधर-उधर देखता बारहसिंघा भी चलता बना। एक लोमड़ी या गीदड़ जैसा जानवर, जो पहले बैठा दिखाई दिया था, पता नहीं कब और कहां अपने-आप चला गया था, किसी ने ख्याल भी नहीं किया था।

पथरीला नाला पार करते ही बड़ी दादी बिल्कुल साफ दिखाई देने लगी थीं। सब ने एक बार जैसे देवी भगवती के दर्शन किए थे—देवी भगवती या वन देवी! सबने मन-ही मन माथा झुकाया था और अपने-अपने आंसू रोके थे।

बड़ी दादी बिल्कुल निश्चल बैठी थीं।

तभी बड़ी अम्मा ने सन्तो की बाह पकड़कर उससे कहा था—अपनी बड़ी दादी को पुकार।

पहली बार तो सन्तो की आवाज ही नहीं निकली थी, फिर उसने सब कुछ भूल के पुकारा था—

—वड़ी दादी !

सन्तो की आवाज़ की गूंज न जाने कैसे सब तरफ से आई थी, झाड़ियों, झुरमुटों, तनों, टहनियों, पत्तों, पत्थरों, पानी और हवा ने भी जैसे पुकारा था—वड़ी दादी ।

पूरा जंगल गूंज रहा था—वड़ी दादी । वड़ी···दादी···

सन्तो की पूरी काया में जैसे आवाज़ ही आवाज़ भर गई थी और वह जंगल की गूंज के साथ पुकारती भागी थी—

—वड़ी दादी । हम आ गए ।

वड़ी दादी ने तव आंखें खोली थीं और उनकी मोम जैसी आंखों से मोती ढुलकने लगे थे···दोनों आंखें धारासार मोती गिराती जा रही थी···फिर अपने चांदी जैसे वाल पीछे करके उन्होंने वांह से अपनी आंखें पोंछी थीं और अपनी दोनों वांहें फैला दी थीं ।

पूरा परिवार उन दोनों वांहों में समा गया था । पता नहीं वड़ी दादी ने इतनी वड़ी वांहें कैसे कर ली थीं ! वड़ी दादी ने सब को आशीर्वाद दिया था और सबको प्यार करके पूछा था—

—चन्दू कैसा है रे !···जस्सू तू ठीक है न···!

—अम्माजी ! तुम विना कुछ कहे हमें छोड़ के चली आईं । इन्ने तुम्हें कहां नहीं देखा—कहां नहीं खोजा···काशी, प्रयाग, चित्रकूट, हरिद्वार, ऋपिकेश,···किस-किस कुएं में वांस नहीं डाले···फिर हम सब हार के वैठ गए । वह नो हमारे भाग्य की वात थी कि हरकारा भइया हमें पूछते हुए आ गए तो हमे आज तुम्हारे दर्शन हो गए ।···वड़ी अम्मा ने अप आंसू पोंछके उलाहना दिया—हमसे का गलती हो गई थी अम्माजी !

—नाहीं वहू ! अइसा कुछ नाहीं था । दो ही वातें थीं···एक हमें लगा कि अव कोई नरपत नाहीं रहा हमारे कुनवे में । एक नरसिंह —वो महाराजाजी के लिए वलिदान हो गए···फिर दो पीढ़ी हमने स किया । अपनी जाई औलाद देखी, तेरी जाई भी देखी···इन लोग रंग-ढंग देख के हमारा मन दरक गया ।

वड़ी दादी यह वोलीं तो वड़े वापू और जसवन्त दोनों सकु लगे ।

—बड़ी अम्मा! हमसे गलती हो गई। आखिर जसवन्त ने कहा।

—नाहीं बेटा! गलती वो होती है जिसका मन में धुआं उठे। जब हमने तुझे बरजा था तब तेरे मन में धुआं नाही उठा था। पर छोड बेटा ...जो हो गया, सो हो गया...हमे तो तू अब भी दुलारा है।...बड़ी दादी ने इतना कहा तो जसवन्त ने बड़ी आस से बापू की तरफ देख के सास ली।

—तुम लोग कोई बोझ मत धरे रहो। अब हमारे मन में कछु नाहीं है। बड़ी दादी ने सब को जैसे सहारा दे दिया, पर जो मन में आया था, वह कहती चली गई।

—समझी बहू! तो पहली बात मन दरक गया था। जैसे दरकी सिल घर में नहीं रखी जाती है, वैसे ही दरका मन भी घर मे नाही रखना चाहिए। सो हम चली आई...औ' दूसरी बात यह रही बहू—हमें भरोसा हो गया था, अब तू सब तरह से सीख-पढ गई। तूने घर की पूरी लीक अच्छी तरह से पकड़ ली थी ...सो हमारा मन निफिकर था। हमने जान लिया था, अब हम नाहीं भी होंगे तो तू सब चलाय लेगी...। कहते हुए बड़ी दादी ने बड़ी अम्मा को छाती से चिपका लिया था और कहती जा रही थी—हम बिल्कुल निफिकर होय गए थे बहू। हमने देख लिया था, अच्छी तरह जान लिया था—तेरी छाती हमारी छाती जैसी धड़कन लगी थी...तेरी आंखें हमारी आखों से देखने लगी थी...तब बोल हमें का था? हमने जान लिया था...अब सब ठीक है। कुछ भी होय...जो औरत घर चलाती है, वह पहले घर का सोचती है। हमें लगा, अब तू घर चलाय लेगी।

—लेकिन अम्मा! तुमने नाहीं सोचा कि हमारा का होगा! तुम्हारे बिना हम कइसे रहेंगे!

बड़ी दादी चुप रहीं। फिर उन्होंने बडी भोली हसी से अपने मन में कुछ कहा, फिर हरकारे की तरफ देखकर बोली—

—तुमने अच्छा भी किया और बुरा भी किया हमारे साथ। काहे को जाके बताया इन लोगन को!

—बड़े-बूढ़ों के बिना घर-घर नहीं रहता। हमने तो जभी से तुम्हें देखा रहा, तभी से सोच लिया था···मिलवा के रहेंगे। हरकारे ने एक तिनके से अपना कान कुरेदते हुए कहा।

—अरे···हम तो मोह-ममता त्याग के अब रहना चाहती थीं। एक ही मोह रह गया था—इन लोग के बाबा का। वह मोह जोड़े था इस धरती से···नाहीं तो औरत का कोई मोह नाहीं होता···हमने सोचा अब मुक्त हो गई हम। पर तुमने हमारी मुक्ति रोक ली।

—सच कह रही हो अम्मा? बापू ने हिम्मत करके पूछा।

—सच बोल दूं? बड़ी दादी ने पूछा था।

किसी ने हामी नहीं भरी। न मालूम बड़ी दादी के ज्वालामुखी जैसे मन में से कौन-सा लावा फूट पड़े···कौन-सी आग भभक उठे। हामी तो किसी ने नहीं भरी, पर उनकी बात सुनना सब चाहते थे। सब के मन पर बोझ था।

बड़ी दादी उठके खड़ी हो गई—

—सच्ची-सच्ची सुन लो। हमें तो तुम्हारे बाबा की याद पुकार लगाती थी···आहट आती थी···वही याद हमें धरती से बांधे थी—शायद तुम्हारे बाबा आ जाएं! न मालूम कब घर का मोह उन्हें खींच लाए··· पर जब वह नहीं आए और हमारी आस बिल्कुल टूट गई तो हमने सोचा —अब जब उन्हें हमारी मोह-ममता नाहीं रह गई तो हम अपनी काया को काहे बांधे रहें!···इतना निर्मोही तो हमने उन्हें नाहीं समझा था। फिर हमारी आस चन्दु ने तोड़ दी—जस्सू ने उलटा ही किया। तब बाकी का बचा था! न उन्हें हमारी याद आती थी, न हमारे कोख के जाये को उनकी याद रह गई। उनका बदला लेने वाला कोई नरपत हमने नाहीं जाना। हमारी दो आंखें अकारथ चली गईं···बस तब हमार मन दरक गया···कहते हुए वह बैठ गईं।

फिर बड़ी देर तक बड़ी दादी का लावा बहता रहा सब चुपचाप सुनते रहे। कोई कुछ नहीं बोला। बोलने की किसी की हिम्मत नहीं थी।

—बस···हम तो उसी चट्टान पर गईं···माथा टेक के तुम्हारे बाबा को परनाम किया, और इस जंगल में चली आईं। सब ने बताया था ···तुम्हारे बाबा इसी जंगल की तरफ आये थे। पहले तो हमने उन्हें बहुत खोजा···इसी जंगल में···फिर हम हिया बस गए···मानव जोनि मिलने में हजारों बरस लगते हैं···पर जानवर की जोनि से जीव जल्दी-जल्दी मुक्त होय जाता है···हमें लगा, का पता, कौन जोनि में तुम्हारे बाबा मिल जाएं! मन में इतना ही था बड़ी बहू—उनने मिलके बताय दें—अब तुम्हारा बदला लेने वाला कोई नाहीं रहा···अब तुम भी अपनी आत्मा को मुक्त करो और चैन से रहो। आखिर उनकी आत्मा कब तक भटकती···।

—बड़ी दादी! बड़े बाबा मिले? सन्तो ने आंखें बड़ी-बड़ी करके पूछा।

—नाहीं बेटा। उन्ने हमसे मुंह मोड़ लिया···अब वो कभी पूछने नाहीं आएंगे···जान तो उन्ने सब लिया होयगा···पर जब जनम-जनम की गांठ बांधी है तब हमारा धरम था—उनने बताय दूं। फिर बड़ी दादी ने गहरी सांस लेकर कहा—

—न जाने वो कहां-कहां भटक रहे होंगे···जब तलक हम यह देह धारन किए हैं तब तलक तो वह बिचारे भटकते ही रहेंगे···हमारे बिना दूसरी जोनि में कइसे जाएंगे। तब हमने सोचा···हम अपनी देह विसर्जित कर दें, नाहीं तो हम दोनों भटकते रहेंगे···हम धरती पै, तुम्हारे बाबा सुरग में।

—अम्मा! हम तुम्हें लेने आए हैं। बापू ने सबकी तरफ से कहा।

बड़ी दादी हंसीं।

—अब तो हमारे हाड़ ले जाना। हम जाके का करेंगी!

—नाहीं अम्मा! बड़ी अम्मा ने उनके घुटने पर दोनों हाथ रखके विनती की।

बड़ी दादी के मुंह से कराह-सी निकल पड़ी।

—बड़ी बहू! तेरे हाथ रखते ही यह टांगें पिराने लगीं। कब से तूने हमारी टांगें नाहीं दाबीं।

—अम्माजी ! जब से तुम्हारे चरन रात में छूने को नाहीं मिले तब से ई दोनों हाथ भी बहुत दुखते हैं'' रातें पसर जाती हैं कि काटे नाहीं कटती ! इन हाथों को तुम्हारी काया का परसे न मिले तो मन जुड़ाता नाहीं !'''बड़ी अम्मा ने कहते हुए उनकी टांगें दबानी शुरू कर दी थीं।

बड़ी दादी धीरे-से वैसे ही लेट गईं जैसे अपनी खटिया पर लेटती थी'''बस, उन्होंने अपनी बांहें मोड़ के सर के नीचे लगा ली थीं।

अब वहां न घर की दीवारें थीं, न छत, न गाय-गोरू, न कुआं—पर जैसे पूरा घर वहीं बन गया था।

—अम्माजी...आज दीवाली है ! चाहें तो घर चलें ! हम तो यही सोच के आई थीं—तुम्हें लेके ही चलेंगे ! रास्ते में सब सगुन हुए थे, तभी हमारे मन ने कहा था'''अब सब ठीक है।

—लेकिन अब तो हमारा एक घर-कुनबा हियां भी है बहू। इन सबको छोड़ के जाना कैसे होगा'''और वह भी त्योहार के दिन। तुम्हें नाहीं मालूम—ये जितने जानवर हैं, समझते-बूझते हैं'''ये भी अपना त्योहार मानते हैं'''इनसे डरना मत'''सब घूमते-घामते लौट आएंगे '''सारी सिरष्टी की बातें करेंगे'''सब कुछ आके हमें बताएंगे ?

—बड़ी दादी '''तुम्हें इनसे डर नहीं लगता ? सन्तो ने पूछा था।

—नाहीं बेटा। सबका खून लाल होता है'''सबका दूध सफेद होता है'''सब के मन में मोह-ममता होती है ! सबकी देह में दरद होता है। ये जानवर तो हमसे भी जादा भोले होते हैं'''हमने तो अब अच्छी तरह देखा है'''। बड़ी दादी कह ही रही थीं कि झाड़ियों में सरसराहट हुई।

—देखो'''एक तो आय गया !

सामने भालू खड़ा था, सन्तो ने पहचानने की कोशिश की—वही पहले वाला है या दूसरा—पर वह पहचान नहीं पाई।

—आजकल बहुत भूखे रहते है ये ! बड़ी दादी ने भालू की तरफ देखते हुए कहा—मधु नाहीं मिलता इन्हें जंगल में। जब मधुमक्खी अपना छत्ता लगाती है और ये चढ़ के उसे तोड़ते हैं और मधु पीके लौटते हैं

तब देखो इन्हें ! ऐसे अलसाते-झूमते हैं जैसे सन्तो छोटी बहू का दूध पीके झूमती-अलसाती थी। मधु का नसा चढ़ता है इन्हें अब तो बिचारे कन्द मूल खाके लौटे हैं। कहते हुए बड़ी दादी ने उस भालू का पंजा पकड़ लिया था और उसके गुदारे पंजे को सहलाती और तेज नाखूनों को छूती हुई वह बड़े प्यार से उसे देख रही थी। फिर उसे थपथपा के उन्होंने अलग कर दिया था।

और शाम होते-होते सभी तरह के जंगली जानवर उधर आए थे, कुछ आए और चले गए थे, कुछ जाके फिर लौट आए थे। बड़ी दादी के पास उसका खासा जमावड़ा लगा हुआ था। जंगल में रात जल्दी उतरती है। बड़ी दादी ने कहा—

—तो लक्ष्मी पूजन करलें अम्माजी !

—जरूर ! नाले से मिट्टी ले आ···यहीं बना लेते हैं अपने गनेश-लक्ष्मी !

—मैं बनाता हूं ! हरकारे ने कहा।

यह तो पता ही नहीं था—हरकारे के साथ पहर ही कितने बीते थे। उसने जब गीली मिट्टी लाके गणेश-लक्ष्मी की प्रतिमाएं बनाईं तो सब दंग रह गए।

—तू कुम्हार का बेटा है का ? बड़ी दादी ने माटी की मूरतें देख के हरकारे से पूछा।

—हां ! अम्माजी !

—लगा तो हमें भी था।

—कैसे ?

—जैसे तू अपने 'पहुंचे' से खुजला रहा था तभी लगा था तू जरूर कुम्हार का बेटा होगा।

—सो कैसे बड़ी अम्मा ? छोटी बहू ने दियों में घी भरते हुए पूछा था।

—देख छुटकी ! जिनके हाथ में कला होती है वो नाखून से नहीं खुजाते · जरूरत पड़ी तो पहुंचा मोड़ के खुजाते हैं। ये हमारे भालू भी बड़े भारी महात्मा हैं ··इनका रहना-सहना देख···ये भी नाखून से

—अम्माजी ! जब से तुम्हारे चरन रात में छूने को नाहीं मिले तब से ई दोनों हाथ भी बहुत दुखते हैं·· रातें पसर जाती हैं कि काटे नाहीं कटतीं ! इन हाथों को तुम्हारी काया का परसे न मिले तो मन जुड़ाता नाहीं !···बड़ी अम्मा ने कहते हुए उनकी टांगें दबानी शुरू कर दी थीं।

बड़ी दादी धीरे-से वैसे ही लेट गईं जैसे अपनी खटिया पर लेटती थीं···बस, उन्होंने अपनी बांहें मोड़ के सर के नीचे लगा ली थीं।

अब वहां न घर की दीवारें थीं, न छत, न गाय-गोरू, न कुआं—पर जैसे पूरा घर वहीं बन गया था।

—अम्माजी...आज दीवाली है ! चाहें तो घर चलें ! हम तो यही सोच के आई थीं—तुम्हें लेके ही चलेंगे ! रास्ते में सब सगुन हुए थे, तभी हमारे मन ने कहा था···अब सब ठीक है।

—लेकिन अब तो हमारा एक घर-कुनबा हियां भी है बहू। इन सबको छोड़ के जाना कैसे होगा···और वह भी त्योहार के दिन। तुम्हें नाहीं मालूम—ये जितने जानवर हैं, समझते-बूझते हैं···ये भी अपना त्योहार मानते हैं···इनसे डरना मत···सब घूमते-घामते लौट आएंगे ···सारी सिरष्टी की बातें करेंगे···सब कुछ आके हमें बताएंगे ?

—बड़ी दादी ···तुम्हें इनसे डर नहीं लगता ? सन्तो ने पूछा था।

—नाहीं बेटा। सबका खून लाल होता है···सबका दूध सफेद होता है···सब के मन में मोह-ममता होती है ! सबकी देह में दरद होता है। ये जानवर तो हमसे भी जादा भोले होते हैं···हमने तो अब अच्छी तरह देखा है···। बड़ी दादी कह ही रही थीं कि झाड़ियों में सरसराहट हुई।

—देखो···एक तो आय गया !

सामने भालू खड़ा था, सन्तो ने पहचानने की कोशिश की—वही पहले वाला है या दूसरा—पर वह पहचान नहीं पाई।

—आजकल बहुत भूखे रहते हैं ये ! बड़ी दादी ने भालू की तरफ देखते हुए कहा—मधु नाहीं मिलता इन्हें जंगल में। जब मधुमक्खी अपना छत्ता लगाती है और ये चढ़ के उसे तोड़ते हैं और मधु पीके लौटते हैं

तब देखो इन्हें ! ऐसे अलसाते-झूमते हैं जैसे सन्तो छोटी वहू का दूध पीके झूमती-अलसाती थी। मधु का नसा चढ़ना है इन्हें अब तो विचारे कन्द मूल खाके लौटे हैं। कहते हुए बड़ी दादी ने उस भालू का पंजा पकड़ लिया था और उसके गुदारे पंजे को सहलाती और तेज नाखूनों को छूती हुई वह दड़े प्यार से उसे देख रही थी। फिर उसे थपथपा के उन्होंने अलग कर दिया था।

और शाम होते-होते सभी तरह के जंगली जानवर उधर आए थे, कुछ आए और चले गए थे, कुछ जाके फिर लौट आए थे। बड़ी दादी के पास उसका खासा जमावड़ा लगा हुआ था। जंगल में रात जल्दी उतरती है। बड़ी दादी ने कहा—

—तो लक्ष्मी पूजन करलें अम्माजी !

—जस्सू ! नाले से मिट्टी ले आ''' यहीं बना लेते हैं अपने गनेश-लक्ष्मी !

—मैं बनाता हूं ! हरकारे ने कहा।

यह तो पता ही नही था—हरकारे के साथ पहर ही कितने बीते थे। उसने जब गीली मिट्टी लाके गणेश-लक्ष्मी की प्रतिमाएं बनाई तो सब दंग रह गए।

—तू कुम्हार का बेटा है का ? बड़ी दादी ने माटी की मूरतें देख के हरकारे से पूछा।

—हां ! अम्माजी !

—लगा तो हमें भी था।

—कैसे ?

—जैसे तू अपने 'पहुंचे' में खुजला रहा था तभी लगा था तू जरूर कुम्हार का बेटा होगा।

—सो कैसे बड़ी अम्मा ? छोटी वहू ने दियों में घी भरते हुए पूछा था।

—देख छुटकी ! जिनके हाथ में कला होती है वो नाखून से नहीं खुजाते ' जरूरत पड़ी तो पहुंचा मोड़ के खुजाते हैं। ये हमारे भालू भी बड़े भारी महात्मा हैं ''इनका रहना-सहना देख ''ये भी नाखून से

नहीं खुजाते…।

तब तक अंधेरा काफी उतर आया था।

अब तो चारों तरफ से अंधियारा घिर रहा था। झींगुर और झिल्ली कभी-कभी बोल पड़ते थे। पत्ते काले पड़ने लगे थे। झाड़ियां जैसे बुझ गई थीं। नाले के पानी की आवाज़ दब गई थी और पूरे जंगल से तरह-तरह की आवाज़ें आ रही थीं।

—जंगल दिन में सोता और रात में जागता है। बड़ी दादी ने चारों तरफ की आवाज़ों को सुनते हुए कहा था।

फिर वहीं गणेश-लक्ष्मी की पूजा हुई थी और सबने मिलकर दीपक जलाए थे।

जब सब दीपक जल गए तो बड़ी दादी ने हाथ ऊपर करके जैसे भगवानजी से आशीष मांगा था—सबके घर जगमगाएं! सबके घर बाबा गनेश की किरपा हो…विघन बाधा से दूर रहें…सबके घरों में लक्ष्मीजी पधारें।

जंगल में मंगल हो गया था।

बड़ी अम्मा जो खाने का सामान झोलों में भर कर लाई थीं—सबके सामने बड़े-बड़े पत्तों पर परस दिया गया था। बड़ी दादी ने थोड़ा-थोड़ा सब जानवरों के सामने फेंका था और जब बड़ी अम्मा ने पापड़ियों साथ उन्हें धनिया की चटनी दी थी, तो बड़ी दादी एकदम बिक गई थीं।

—बड़की! तू बहुत दुष्ट है। ई हरे धनिया की चटनी बनाके हियां तक ले आई—तू मुझे मोह-ममता से कभी छूटने नाहीं देगी। कहकर बड़ी दादी ने बड़ी अम्मा को छोटी बच्ची की तरह अपनी छाती से चिपका कर प्यार किया था।

मन्नो देखती रह गई थी—थीं तो दोनों ही बूढ़ी—पर बुढ़ापे-बुढ़ापे में कितना फरक था। बड़ी दादी की छाती से चिपकी बड़ी अम्मा गुड़िया की तरह लग रही थीं। जैसे सन्तो अपनी गूदड़ की गुड़िया को कभी-कभी छाती से लगा लेती थी।

इतने बरस बाद वही मैनपुरी स्टेशन की रेलवई वाली गुमटी के मैदान में गुड्डे-गुड़िया का खेल खेलते हुए शान्ता को सब कुछ ज्यों का त्यों याद हो आया था।

अब तो रेलवई की बस्ती बहुत बस गई है। तरह-तरह के लोग आ गए हैं। अब तो गाड़ी भी दिन में दो बार आती है। मुसाफिर भी चढ़ने-उतरने लगे हैं और बड़ी दादी वाला घर गांव न जाने कहां पीछे छूट गया है।

बस—शान्ता को इतना ही याद है कि दीवाली के दूसरे दिन सवेरे पूरा कुनबा जंगल से वापस चला था। बड़ी दादी भी साथ आई थी। उनके जंगल के सभी जानवर जंगल के बाहर तक उन्हें छोड़ने आए थे जिन्हें परनाम करके बड़ी दादी ने विदा किया था।

अपने घर की खातिर बड़ी दादी बाबू के पास ही मैनपुर में रहने लगी थी। उन्होंने जैसे सब कुछ मान लिया था। यह भी कि अब यह संसार उनका नहीं रह गया है। अब यह संसार गोरे-लंगूरों का हो गया है। और यहीं इसी गुमटी में बड़ी दादी ने इच्छा-मृत्यु प्राप्त की थी। सबको बुला लिया था। गांव के लोग भी आए थे—और बड़ी दादी ने अपने 'जाने' का दिन और पहर तय कर लिया था।

काफी दिनों से बड़ी दादी ने सब कुछ त्याग दिया था। उन्हें न तो कुछ अच्छा लगता था, न बुरा। अब न उन्हें गर्मी व्यापती थी, न जाड़ा…न लू उनकी देह को जलाती थी, न सर्दी में उन्हें कंपकंपी लगती थी।

जब उनके जाने-पहचाने सब आ गए थे तब इस गुमटी वाले छोटे से घर में मेला लग गया था। यहां तक कि जाती हुई रेलगाड़ी रोक दी गई थी और सबने बड़ी दादी का प्राण-विसर्जन देखा था।

सन्तो को वह सब पूरी तरह याद है—आज ब्याह के लिए गुड़िया को सजाते-सजाते सन्तो को बड़ी दादी और बड़ी अम्मा की बहुत याद

छाई थी। एक पल के लिए तो बच्चों को लगा था—यह खुद बड़ी दादी बन गई है और उसकी गुड़िया बड़ी अम्मा की तरह उसकी छाती से चिपकी है। गुड़िया के काले बाल तब उसे बड़ी अम्मा के सन जैसे बालों की तरह सफेद ही दिखाई पड़े थे।

और तब यह सब उसकी आँखों में बादल की तरह गहरा हुआ चला आया था... आज-नियोजन से एक रात पहले बड़ी दादी ने उसे पास बिठा कर कहा था—

—सुनो बेटा सुन!

—हाँ बड़ी दादी!

—देख बेटा! अब तुम तो कभी भी चली जाओगी...पर आगे पर-परिवार का कुछ मेल होता है...मेरी बड़ी अम्मा और मेरी अम्मा भी तुझे बताएँगी। पर बेटा, मेरी इन आँखों में एक ही सपना पलता है... तेरे बड़े बाबा की मर्यादा रखने वाला अब कोई नहीं है। अपने बड़े बाबा को याद रखना बेटा और उनकी मर्यादा की रक्षा करना...बस बेटा! तुमसे इसीलिए बोल दिया...कि तू सबसे छोटी है और सबसे ज्यादा जिएगी। मेरी बात भूलेगी नहीं न!

तब बालिका ने बड़ी दादी की ओस जैसी पनीली आँखों में एक जोत देखी थी। उस जोत में रात का अंधियारा फट गया था—उसी तरह जैसे उस रात जंगल में घी के दीयों से जंगल का अंधियारा बिखर गया था।

फिर तो दूसरे दिन सवेरे से मेला जुड़ने लगा था और दिन-चढ़े तक ही बड़ी दादी ने अपने हाथों से बाल संवारे थे। चोटी ठीक से बाँधी थी। बार-बार आँखें बन्द करके न जाने किस-किस को याद किया था और अन्त में सब-सारे बच्चों को देखा था और मंदिर पर बैठ कर तुलसीदल और गंगाजल माँगा था।

तुलसीदल और गंगाजल देने जब बापू और बाबू आगे बढ़े थे तो बड़ी दादी ने बड़े धीमे भाव से उन्हें मना कर दिया था, और इशारे से बताया था——दोनों चीजें बच्चों को पकड़ा दो।

तभी पुजारीजी बोले थे—

—मालकिन ! इससे पिण्ड-मुक्ति नहीं होगी ! जब बेटा और पोता, दोनो पुरुष मौजूद हैं तो अन्तिम नेम यही करेंगे !

बड़ी दादी के मुंह पर कोई भाव नही था। उन्होने पुजारीजी से एक-रस आवाज में बस इतना ही कहा था—

—महाराज ! तुम्हें नाही मालूम''' हमारी असली मुक्ति कहां है। हमारी मुक्ति सुरग-नरक में नाही है''' वह इसी धरती पे है।''' और तब सन्तो की तरफ देख के बड़ी दादी ने उनसे कहा था—बेटा तुलसी-दल दे ! गंगाजल हमारे मुंह मे डाल ! कहते हुए उन्होंने सबको प्रणाम किया था।

हरि ओम ! हरि ओम ! की आवाजें तभी एकदम ऊपर उठी थी। और बड़ी दादी ने सदा-सदा के लिए आखें बन्द कर ली थीं।

तब बडी दादी को गुड़िया की तरह सजाया गया था और बड़ी धूमधाम से उनकी अर्थी श्मशान की तरफ ले जाई गई थी। बड़े बाजे बजे थे। वही गांव के नपीरी और नगाड़े वाले आए थे।

तभी शान्ता के कानो मे बाजो की आवाज पडी—सूरज अपने गुड्डे की बारात लिए दरवाजे पर आ गया था।

सन्तो की गुड़िया अभी सज के तैयार भी नही हो पाई थी।

—ऐ सन्तो ! जल्दी कर ! बारात आ गई है ! सूरज ने तुनकते हुए कहा—वह देख रहा था, सन्तो की गुडिया अभी तैयार ही नही थी। यह भी कोई बात हुई''' वह तो बारात लेके आ गया था। पण्डितजी भी साथ थे। बाजे वाले कागज की नपीरिया फूंके जा रहे थे। जीतू दबादब ढोल बजा रहा था।

वैसे तो शान्ता के घर मे दावत का सारा सामान भी तैयार था। चिकनी मिट्टी की पूड़ियां, कागज के पापड और रेल बेल के पत्तो की तरकारी तैयार थी। मिठाई-नमकीन के लगे हुए सकोरे भी तैयार थे—सिर्फ गुड़िया के सिंगार मे देर हो रही थी। मोतियो की माला नही बन पाई थी। सुई भी पता नही कहां खो गई थी। सन्तो भी बार-बार थूक

ने डोरे का सिरा ठीक करके मोती पिरो रही थी।

—ज़्यादा देर करेगी तो तेरी गुड़िया बिन ब्याही बैठी रह जाएगी ! सूरज ने कहा तो सन्तो तमतमा उठी—

—तो तेरे गुड्डे की फिकर किसे है ! हमारी गुड़िया को बहुत मिल जाएंगे ! सन्तो ने गुड़िया के गले में माला पहनाते हुए कहा—तेरा गुड्डा अकेला नहीं है दुनिया में, हमारी गुड़िया के लिए ! समझे !

सन्तो ने कहा तो सूरज ने गुड्डे को पण्डितजी को पकड़ा दिया और खुद सन्तो की बांह पकड़ ली।

—क्या कह रही है तू ?

—ठीक कह रही हूं।

—ऐसा फिर कभी तो नहीं बोलेगी।

—ज़रूरत पड़ी तो बोलूंगी !

—ऐ, सन्तो सुन···

—बोल···

—देख !

—दिखा !

—तू ऐसा ही मुझसे बोलेगी !

—तू भी एकदम पागल है सज्जू !

सूरज की आंखों में पानी आ गया था !

—मुझे सच-सच बता !

—अरे उसमे तो बहुत देर है···

तभी पण्डितजी की आवाज़ आई—

—जिजमान ! बहुत देर हो रही है ! बिटिया को ले आओ भाई !

जसवन्त का घर अब गुमटी का नहीं रह गया था···रेलवे वालों की काफी अच्छी बस्ती बस गई थी। इक्कों का अड्डा भी उधर पीपल के नीचे खुल गया था। मैनपुरी की तमाखू वाले की छोटी-सी दूकान भी स्टेशन की सीढ़ियों के पास जम गई थी। बीड़ी और खैनी भी वहीं मिल जाती

थी। छप्पर डालके सीताराम हलवाई ने भी अपनी दूकान बना ली थी। लड्डू-पेड़े और दही हर वक्त रहता था। जब कोई किसीको गाड़ी में चढ़ाने आता था तो दही-पेड़े खिलाके विदा करता था, इससे सीताराम की दूकान चल निकली थी। गाहे-बगाहे इक्के वाले भी एकाएक लड्डू ले ही लेते थे या तीज-त्योहार को घर जाता मानुष उसके यहां से दोने में चार लड्डू बंधवा ही लेता था।

तमाखू वाला किसना तो अपना बड़ा सरौता पैर के अंगूठे से दबाए सुपाड़ी ही काटता रहता था। उसे थूकने वालों से बहुत परेशानी थी। पुड़िया बांधके जब खिलुए की तमाखू गाहक के हाथ पर रखता था तो पहले ही बता देता था—

—ऐ भइया⋯उधर जाके पिचकारी मारना⋯

और उधर पखवारा पहले एक साधूजी आ गए थे⋯आते ही उन्होंने 'बम्भोले' की गुहार लगाई थी और पीपल के नीचे अपना चिमटा गाड़ दिया था। दूसरे दिन वे भिक्षा के लिए बस्ती की तरफ गए थे तो एक पुड़िया चंदन लेते आए थे और गेंदे के चार फूल। आते ही उन्होंने तेल में चंदन घोलके पीपल के तने पर शंकरजी का पंजा थोप दिया था।

तब किसना सरौता छोड़के बहुत ज़ोर से हंसा था, वहीं से छप्पर के नीचे अपना मैल छुड़ाते सीताराम ने उसे देखा था, तो पूछा था—

—का है रे किसना?

—महात्माजी ने पंजा जमाय दिया!

—तो हंसता काहे को है रे!

—अरे, हुअईं तो कलुआ मूतता है!

—चोप्प! बकवासी! सीताराम ने उसे हटका⋯

जब से रेलगाड़ी आने लगी थी, इक्के का अड्डा, किसना की तमाखू की दूकान और सीताराम की लड्डू-पेड़े की दूकान के साथ ही बहुत-से कुत्ते भी रेलवई की बस्ती में आ गए थे। कलुआ सबसे तगड़ा था। असल में कलुआ अकेला आया था, पर बाद में उसने अपना कुनबा बढ़ा लिया था।

बाद में साधूजी और कलुआ की बड़ी दोस्ती हो गई थी। वह दिन भर उन्हीं की तरह भिक्षा पर जाता था और धूरी शाम लौट आता था,

फिर वहीं उन साधूजी की धूनी के पास पड़ा रहता था। धीरे-धीरे साधूजी ने त्रिशूल वाली मठिया भी बना ली थी···वहीं !

इतने दिनों में जसवन्त बड़े बाबू हो गए थे बस्ती के। उनका घर भी बड़ा हो गया था और पिछवाड़े ही मण्डप बना हुआ था। उसीमें शामियाना तना था, बराती रेलवे की कुर्सियों और बेंचों पर बैठे थे, जो जसवन्त ने उठवाके वहां डलवा दी थीं। बरातियों ने ऐसी मूठ वाली बेंचें पहले देखी ही नहीं थीं। मजबूत तो थी हीं···साथ ही कुत्ते की पूंछ की तरह ऐंठी हुई···लाला चिन्तामणी की धोती की कांछ लोहे की मूंठ में ऐसी उलझी थी कि खोलके ही छुड़ानी पड़ी थी।

—विलायती कुर्सी है ! लाला चिन्तामणी ! पण्डितजी ने लाला को बुरे हाल में देखा तो हवन-कुण्ड के पास चटोला डालते हुए बुलाया—तुम हियां आके बैठ जाओ ! विलायती कुर्सी पे बैठना सीखना पड़ता है ! ये कुर्सी बड़े बाबू के ही बस की है ! तुम अपनी कांछ लगाके इधर निकल आओ···साथ ही हवन-कुण्ड की अग्नि प्रज्ज्वलित करते हुए पण्डितजी ने फिर आवाज़ लगाई—

—जिजमान ! बिटिया को भेजो···

बरात की देखभाल जोर-शोर से हो रही थी। जसवन्त का बड़ा बोलबाला था। पचीस कोस तक खबर थी—बड़े बाबू की बिटिया का ब्याह हो रहा है। बराती भी बड़े ठसके से आए थे—तेल-फुलेल लगाके। एकाध ने तो चुटिया में फूल भी लगा लिया था।

तभी जनाती लड़के ने परात में रखे शरबत के कुल्हड़ आगे बढ़ाते हुए कहा—सूरज भइया···शरबत पिएं !

—नहीं, मन नहीं है। सूरज ने कहा और अपनी आंखें सबकी आंखें बचाके पोंछ लीं। उसकी आंखों में बार-बार पानी का परदा पड़ जाता था। पता नहीं उसे क्या हो गया था—

रह-रहके उसकी आंखों के सामने बहुत बरस पहले वही गुड़िया-गुड्डे का ब्याह तैर जाता था—जब शान्ता ने कहा था—मेरी गुड़िया पीछे-पीछे चलेगी—तब सूरज ने अपना गुड्डा आगे कर दिया था। गुड्डे-गुड़िया भांवरें ले रहे थे और सच पूछो तो अपने-अपने हाथों में

उन्हें पकड़े, और उन्हें भांवरों पर घुमाते शान्ता और सूरज ने ही फेरे ले लिए थे।

इससे पहले कि सूरज की आंखों में फिर से पानी की दीवार उतर आए···उसने विवाह-मण्डप की ओर देखा था—

शान्ता के पैर दो अजाने पैरों के साथ-साथ अग्नि के फेरे ले रहे थे···

फेरे खत्म हुए तो लोगों ने फूल फेंके। पण्डितजी ने मन्त्रोच्चार करते हुए आशीर्वाद के अक्षत डाले जो शान्ता के लाल जोड़े की सलवटों में भी अटक गए थे।

पण्डितजी ने कहा—जाओ बेटा ! अपने ससुरजी का आशीर्वाद लो।

तभी छोटी ननद मंजू ने अपनी भाभी को बांह से पकड़ के कहा—

—बाबूजी उधर बैठे हैं !

शान्ता ने घूंघट के पार से देखा तो सूरज की हटती हुई छाया-सी दिखाई दी···तब तक मंजू उसे बाबूजी के पास तक ले गई थी।

बाबूजी ने बहू-बेटे को आते देखा तो पैरों के पम्प-शू उतार कर अपने पैर रगड़ के साफ कर लिए।

तभी प्रवीन और शान्ता ने झुककर बाबूजी के पैर छुए तो उन्होंने दोनों के सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया—

—सुखी रहो दोनों, सदा सौभाग्यवती रहो बेटी।

अब जसवन्त को लगा कि बेटी उनकी नहीं रही। उनकी आंखों में आंसू आ गए। आगे बढ़कर जसवन्त ने शान्ता को सम्भाला और उसे एक तरफ करके अपने दोनों हाथ बाबूजी के पैरों पर रख दिए—

—बाबूजी ! आज से यह आपकी बेटी हो गई ! हमसे जो भूल-चूक हुई हो, माफ कर दीजिएगा !

बाबूजी ने उन्हें दोनों बाहों से पकड़ लिया।

—कैसी बातें करते हैं बड़े बाबू ! भूल-चूक कैसी ? हमें तो शान्ता बेटी मिल गई···समझिए सब कुछ मिल गया !

प्रवीन की सालियां-सलहजें, जो देर से खड़ी थीं, उन्हें मौका मिल गया, उन्होंने प्रवीन और शान्ता को घेर लिया—

—जीजाजी, भीतर चलिए···सबसे पहले देवपूजा होगी।

प्रवीन को बताने वाला कोई नहीं था, सिवा छोटी बहन मंजू के, उसे भी ज्यादा पता नहीं था। अम्मा ने थोड़ा-बहुत बता दिया था, सो उसने प्रवीन को रोका—

—दद्दा! यह सब मजाक करेंगी···सोच-समझ के सब करना!

इसी बीच औरतों ने मंगल गान गाने शुरू कर दिए थे···मंजू ने अपनी भाभी का घूंघट थोड़ा ऊपर कर दिया था। प्रवीन और शान्ता के पटके की गांठ अभी बंधी हुई थी, उसके लटकते सिरे को एक साली ने शैतानी से बड़ी बुआ से खूंट से बांध दिया था। प्रवीन को सालियों ने भीतर आने के लिए खींचा तो बड़ी बुआ भी खिंचती चली आईं। प्रवीन तो नहीं समझ पाया, पर शान्ता को जोर की हंसी आ गई···

शान्ता ने चौंके हुए प्रवीन को सम्भालने के लिए पहली बार भर आंख देखा—

तभी कहीं से दनदनाती हुई एक गोली छूटी।

गोली की आवाज कड़कड़ाती हुई चारों दिशाओं में बिजली की तरह कौंध गई।

औरतें चीखती घर के भीतर भागीं—बच्चे घबराहट में इधर-उधर भागे तो मांओं ने उन्हें गोदी में दबा लिया। आदमी सहमे से खड़े रह गए।

शान्ता ने कौंध कर अपना घूंघट उठाया और एकदम बाईं तरफ देखा—उधर सूरज खड़ा था।

तभी दूसरी गोली छूटी। चीख-पुकार और बढ़ कर एकदम खामोश हो गई—जैसे भयानक सन्नाटा छा गया—सबकी सांसें अटक कर रह गईं, ऊपर की ऊपर, नीचे की नीचे···कोई कुछ समझ ही नहीं पाया, सब भौंचक्के-से खड़े रह गए थे, तभी तीसरी गोली छूटने के साथ एक तेज चीखती आवाज आई—

—कोई अपना जगा से नईं हटेगा! भागने का कोशिश करेगा तो

हमारा गोली से मारा जाएंगा···

तभी एक तरफ सरकते सूरज को रोकते हुए अंग्रेज सार्जेण्ट चीखा—

—इदर खड़ा रहने का !

अब भी बात पूरी समझ में नहीं आई थी···पर बाबूजी और प्रवीन सब कुछ समझ गए थे। शान्ता कुछ नहीं समझ पाई थी, सिवा इसके कि सूरज ने कुछ नहीं किया था, पता नहीं क्यों उसका दिल एकदम पहली गोली पर धड़का था और उसे लगा था—कहीं सूरज ने···लेकिन ऐसा कुछ नहीं था···शान्ता की समझ में कुछ नहीं आ रहा था, उसने अपनी ननद मंजू को गोद में दुबका लिया था—तभी शान्ता ने देखा था—तमाम गारद ने सब को घेर लिया था और एक गोरा सार्जेण्ट पिस्तौल ताने प्रवीन की तरफ बढ़ता आ रहा था···उसके जूते बज रहे थे···तभी प्रवीन ने अपनी ओर की फूलों की लड़ियां झटक कर ऊपर की थीं और सार्जेण्ट पाल जूनियर को देखा था।

तभी पाल जूनियर ने प्रवीन की छाती पर पिस्तौल रख दी थी—किदर हैय टुमारा भाई ?

प्रवीन ने बहुत हिम्मत से कहा था—

—···वो···वो···शादी में नहीं आया है।

—टुम हमारे से झूठ बोलटा हैय ! कहते हुए पाल जूनियर ने प्रवीन का मौर नोच कर फेंक दिया था—टुम साला अंग्रेज बहादुर से झूठ बोलने सकना। किधर है नवीन ! टुमारा भाई !

तभी सहमे से बाबूजी साहस करके आगे बढ़े थे, वह बहुत सम्भलते हुए बोले थे—

—सर ! भगवान की सौगन्ध, हम झूठ नहीं बोलते···नवीन यहां नहीं आया है।

—अपना भाई का शादी में नहीं आएगा, वो कुत्ता ! हमारे को सब मालूम है ! टुम उसका बाप है न, इसी खातिर टुम झूठ बोलटा हैय ! उस कुत्ता को छुपाना चाहता हैय···टुमारा बेटा अंग्रेज बहादुर का तख्ता पलटना चाहता है न···हम उस को फांसी का तख्ता पर लटकाएगा ! समझा टुम ! पाल जूनियर ने बाबूजी के कन्धे पर जोर से वार करते हुए

या और अपनी गारद को हुकुम दिया था—सारा तलाशी लो !
! उस कुत्ता को निकाल के लाओ !

गारद के लोग वन्दूकें लिए, सहमे खड़े लोगों को अपनी वन्दूकों से र-उधर करते हुए भीतर घुस गए थे।

तभी सार्जेण्ट ने हवा में एक और फायर किया था और चीखा था—

—नवीन ! हम हुकुम देता ? सरैण्डर करने का···नई तो इदर सवी मारा जाएगा···सवी तरफ हमारा गारद लगा है···टुम निकल के नई जाने पाएगा ! ···हम वोलता—सरैण्डर करने का ! नवीन ! आ आर्डर यू टु सरैण्डर !

कहता हुआ पाल जूनियर एक तरफ वढ़ा था तो मौका पाकर शा ने मंजू से दवी जवान से पूछा था—

—तुम्हारे नवीन भइया वरात में आए हैं क्या ?

—नहीं···नवीन भइया तो घर भी नहीं आते भाभी···

—कहां रहते हैं वो ?

—कुछ पता नहीं भाभी···अम्मा भी उनका वहुत इन्तजार करती हैं पर नवीन भइया आते ही नहीं···वहुत दिन हुए, तव एक वार आए थे !

तव तक गारद वाले सारी तलाशी लेकर लौट आए थे। उन्हें नवीन कहीं नहीं मिला था। सार्जेण्ट पाल जूनियर ने भी चारों तरफ खोज लिया था, पर उसे भी नवीन कहीं नहीं दिखाई पड़ा था। आखिर अंग्रेज़ी गारद लाचार होकर रह गई थी और पाल खिसियाना-सा हो रहा था।

अव जनातियों और वरातियों की समझ में कुछ-कुछ आ गया था। उनमें से वहुतों ने नवीन के वारे में कभी साफ-साफ और कभी उड़ते-उड़ते कुछ सुना था। पण्डितजी ने लाला के कान में फुसफुसाया था—

—इनका छोटा वेटा वागी है ! क्रान्तिकारी···

आखिर पाल जूनियर ने वावूजी और प्रवीन को आगाह किया था—नवीन को वोलना···सरैण्डर करेगा, नई तो हम टुम लोग का चम उधेड़ के रख देगा ! समझा !

और पैर पटकता, अपनी नाकामी पर खिसियाता सार्जेण्ट पलट चल दिया था। उसके पीछे-पीछे उसकी गारद भी चली गई थी। व

तक उनके बूटों की आवाज आती रही थी।

ब्याह का रंग उखड़ गया था। सभी रिश्तेदारों के दिलों में डर समा गया था। लाला चिन्तामणी ने बाबूजी को राय दी थी—

—भांवरें तो पड़ गई...अब सब छोड़ो और पहली गाड़ी से निकल चलो, इसी मे भलाई है! नही तो सब बराती भाग लेंगे, कोई रुकेगा नही!

सबकी यही राय थी—सब डरे हुए थे।

लालाजी की बात पर सबने हामी भरी थी और पहली गाडी से ही बरात बहू को लेकर चल पड़ी थी। आखिर रेलवई के बड़े बाबू की लड़की की बरात थी। गाडी में जगह और आराम का सब इन्तजाम कर दिया गया था।

जसवन्त ने सीताराम हलवाई को बुलाकर जल्दी-जल्दी पूड़ी-तरकारी का इन्तजाम करवा दिया था। गाडी को रोक कर दो हुण्डों में पीने का पानी रखवा दिया था। पत्तलें, सकोरे और कुल्हड़ भरवा दिए थे, और जल्दी-जल्दी अपने आंसू सुखा कर शान्ता को विदा कर दिया था।



गाडी चली थी तो शान्ता ने भर आख चारों तरफ देखा था—अपनी छूटती बस्ती को। एक पल के लिए उसे सूरज का ध्यान आया था, पर वह कही नही था, तो सच पूछो शान्ता को अच्छा भी लगा था और बुरा भी।

गाडी मे एक ही डिब्बे मे पूरी बरात बैठी थी। बाबूजी को लगा था—बहू फैल-फूटकर बैठ नही पाएगी तो उन्होंने उसी डिब्बे के दरवाज़े वाले कोने पर चादर बाध कर बहू के बैठने के लिए जगह बना दी थी, और मजू के साथ उसे वहा बैठा दिया था।

गाडी मे अब कोई दहशत-डर नही रह गया था। पत्तलें बिछ गई थी और खाना शुरू हो गया था—साथ डिब्बे मे बैठे मुसाफिरों को भी खाने के लिए न्यौता गया था।

...ज्ञाना शुरू हुआ तो मिसिरजी ने अकल की वात शुरू ...
...! भई तुम अपने नवीन को समझाओ ! हुकूमते वर्त्तानिया से
...राना अच्छी वात नहीं हैं ! ऐसे क्रान्ती नहीं होगी ! आज तो वच
..., नहीं तो पूरी वरात की क्रान्ती हो जाती !

प्रवीन को मिसिरजी की वात अच्छी लगी—उसने हुंकारा तो नहीं
...रा लेकिन उसने आंखों-ही-आंखों में मिसिरजी को वढ़ावा दिया।

वावूजी ने अचार का चटखारा लेते हुए धीरे-से मिसिरजी की तरफ
देखा और उनकी पत्तल में पूड़ी परस दी, अचार भी रख दिया, जैसे वे
वात को टालना चाहते थे।

लेकिन वाकी वरातियों को मिसिरजी की वात पसन्द आई थी, तभी
जैसे सहारे के लिए वावूजी ने इधर-उधर देखा था। दो-चार अनजाने
मुसाफिरों से अलग एक वुर्कवाली वेचारी अपनी गठरी लिए कसमसा रही
थी। वावूजी मिसिरजी की नजरों में वार-वार कौंधते हुए उसी एक
सवाल से वचने के लिए जैसे कोई रास्ता खोज रहे थे, पर अब मिसिरजी
के साथ ही लाला चिन्तामणी भी शामिल हो गए थे, उन्होंने डकार लेकर
अपनी धोती का फेंटा ढीला किया और वात फिर शुरू कर दी—

—वात मिसिरजी की ठीक है ! इसमें कुछ रखा नहीं है…अव
अंग्रेज वहादुर का राज तो आ ही गया है वावूजी…सव तरफ सुख-चैन
है…खाने-पीने को मिलना है…चोर-डाकू-पिण्डारी का डर नहीं है !
अरे, हमें क्या पड़ी है जो उनसे लड़ें ! क्यों भई सुन्दरलाल, क्या ख्याल
है तुम्हारा ?

कहते हुए लाला चिन्तामणी ने हाथ झटकारा तो वुर्कवाली के लगते
लगते वचा। वावूजी ने देखा तो उन्होंने वुर्कवाली से कहा—

—वहनजी…आपको इधर मर्दों में उलझन हो रही होगी…ह...
उधर जनाना वना दिया है अपनी वहू के लिए। आप चाहें तो उधर ज...
आराम से वैठ जाएं !

वुर्कवाली औरत ने जैसे राहत की सांस ली, अपनी गठरी उठाई...
वह उधर वाले हिस्से की तरफ वैठे-ही-वैठे सरक गई जिधर पर्दा...
था।

—अरे मंजू ! अपनी भाभी को ठीक से खिला दे···पता नहीं कब से भूखी होगी ! यह आवाज बावूजी की थी।

मंजू ने कौर बनाके फिर शान्ता से मनुहार की—

—भाभी खाओ न···

शान्ता अपने पैर समेटे सीट पर बैठी थी। सच पूछो तो उसे भूख थी ही नहीं— तुम खाओ बीबीजी—कह कर उसने मंजू के हाथ का कौर उसी के मुंह मे रख दिया था।

तभी एक हाथ ने शान्ता का पैर छुआ, शान्ता ने पास बैठी बुर्केवाली को देखा तो था, उसे लगा—शायद उसे कुछ चाहिए था। उसने बहुत धीरे से पूछा—

—आपको कुछ चाहिए ?

तभी उस औरत ने अपना हाथ माथे से लगा लिया था और कहा था—

—हां भाभी ! सिर्फ आपका आशीर्वाद चाहिए !

मंजू तो नवीन को पहचानते ही चीखने को हुई थी कि नवीन ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया था।

—नहीं मंजू ! ऐसे ही चीखना मत !

शान्ता अचरज में पड़ी घबराई-सी अभी कुछ समझ पाई थी और कुछ नहीं तो नवीन ने ही उसका अचरज तोड़ दिया था—

—भाभी ! मैं आपका देवर हूं नवीन ! भइया के ब्याह में आने को बहुत मन था, पर मुझे मालूम था, मैं पहुंचा तो सब बिगड़ जाएगा··· नवीन जैसे एक ही सांस में सब-कुछ कह देना चाहता था—

—सोचा ! भाभी के दर्शन तो कर लूं···पहचान तो लूं, नहीं तो क्या पता, कब किस घाटी, किस पहाड़ी या जंगल में घेर कर ये गोरे कुत्ते मुझे मार डालें···

पता नहीं सम्बन्ध कहां से एकदम फूट पड़ते हैं, शान्ता भी नहीं समझ पाई थी। उसका हाथ एकदम उठकर नवीन के मुंह पर चला गया था और वह बिल्कुल अनजाने बिना सोचे बोल पड़ी थी—

—ऐसा मत कहिए लालाजी···वैसे तो विलायती कुत्ते आपको ढूंढते

हुए घर भी आए थे। शान्ता एकदम नहीं समझ पाई थी कि 'विलायती कुत्ते' उसके मुंह से कैसे निकला था और उसके भीतर से बड़ी दादी एकदम कैसे बोल पड़ी थीं···अभी-अभी उसने जो अपनी आवाज़ सुनी थी, वह उसकी तो नहीं थी, कहीं से बड़ी दादी बोली थीं क्या? उसके तो शायद सिरफ होंठ हिले थे···

तभी नवीन की आवाज़ से वह जैसे फिर गाड़ी में लौट आई थी—

—मुझे मालूम है भाभी! सब मालूम है!

—हां···बड़ी गोलियां चला रहे थे···तुम्हें खोज रहे थे! मंजू ने दबी आवाज में कहा था।

—आप इतना खतरा उठाकर क्यों चले आए लालाजी? अब शान्ता ने अपनी आवाज़ को पहचाना था।

—भाभी! खतरों के साथ-साथ घर की···घरवालों की याद भी तो आती है!

—आपकी जिन्दगी बहुत कीमती है लालाजी!

—छोड़ो भाभी···नवीन ने कहा था—बहुत भूख लगी है भाभी!

—अरे···मैंने पूछा भी नहीं!

—बरसों से भूखा हूं भाभी! अम्मा के हाथ का खाना खाने को कब से तरस रहा हूं! कहते-कहते नवीन की आंखों में पानी आ गया था तो शान्ता ने अपने आंचल से उसकी आंखें पोंछकर उसके मुंह में कौर रख दिया था।

—भैया और बाबूजी से भी मिल लूं! अगले स्टेशन पर मुझे उतर जाना है।

—पहले आप पेट भरके खा लीजिए!

—अम्मा कैसी हैं मंजू? खाते-खाते नवीन ने पूछा था।

—तुम्हें बहुत याद करती हैं दादा भइया···कभी-कभी तो बहुत रोती हैं अम्मा।

नवीन ने कुछ नहीं कहा था। वह जैसे सांस का एक गरम बगूला नीचे दबाकर हट गया था। फिर अपनी आंखें पोंछकर बोला था।

—पता नहीं अम्मा से कब मिल पाऊंगा! खैर···कोई बात नहीं···

भाभी को देख लिया, समझो अम्मा को देख लिया···

तभी गाड़ी की चाल धीमी पड़ी।

मंजू ने कहा—बड़े भइया को बुलाऊं?

—देख···आ सकें तो···बाबूजी भी···:

मंजू परदा हटाकर बाहर निकली तो गाड़ी की चाल एकाएक बहुत धीमी पड़ गई।

—लगता है नहीं मिल पाऊंगा!

स्टेशन कितनी दूर है, यह देखने के लिए शान्ता ने खिड़की में मुंह निकालकर बाहर देखा, तो एकदम सहम गई—

—लालाजी···पुलिस! स्टेशन पर···

गाड़ी स्टेशन पर पहुंच रही थी। एकदम नवीन ने देखा, चौकन्ना हुआ और भाभी के पैर छूकर बोला—

—अच्छा भाभी···जिन्दा रहा तो फिर मिलूंगा। अम्मा को मेरा प्रणाम कह देना, बाबूजी और भैया को भी···कहते हुए नवीन ने धीमी पड़ती गाड़ी का दरवाजा खोला तो उसे सहारा देकर उतार देने के लिए शान्ता ने बांह बढ़ाई। उस हड़बड़ाहट में नवीन के घुटने सीढ़ियों से टकराए, पर शान्ता की बांह के सहारे ने उसे बचा लिया···गाड़ी अभी रुक ही रही थी कि शान्ता ने नवीन को सहारा देकर उस तरफ उतार दिया था, जिस तरफ पटरियों की कैंचियां बिछी थीं।

नवीन लड़खड़ाता उतरा तो उसके हाथ में शान्ता की सोने की चूड़ियां उतरती चली आईं···

—भाभी···ये···

—काम आएंगी···

बस, इतना ही वह कह पाई थी कि गाड़ी आगे सरक गई थी और नवीन ने पीछे छूटते हुए एक पटरी को फलांग के पार किया था—भागने के लिए।

तभी डिब्बे में तमाम गारद घुस पड़ी थी।

हाथ में उसी तरह पिस्तौल ताने फिर पाल जूनियर खड़ा था।

—अब नहीं बचेगा! पाल जूनियर चीखा था और तेज आंखों से

देखता हुआ वह आगे बढ़ा था और उसने पर्दा पलट दिया था—मंजू की चीख निकल गई थी—

—दादा भइया !

— प्रवीन और बाबूजी चौंके थे।

बरात के सब लोगों ने एकाएक देखा था—नई ब्याही बहू शान्ता घूंघट खोले सार्जेण्ट के सामने खड़ी थी—

— क्या है ? वह सार्जेण्ट पर चीखी थी।

— उधर हटो ! सार्जेण्ट शान्ता पर चीखा था।

— नहीं हटूंगी ! शान्ता चीखी थी।

तभी सार्जेण्ट ने बाज की तरह तेज नजरों से खिड़की के पार देखा था और गोली चलाई थी—बाहर···उस तरफ, जिस तरह नवीन उतर कर भागा था।

गोली की आवाज गूंजती चली गई थी। और शान्ता का सीना धक्-से रह गया था।

१२

एक दिन पहले से घर पर बहू के स्वागत की तैयारियां थीं।

रेलगाड़ी की रफ्तार ज्यादा थी, खबरों से, इसलिए घर पर किसी को मालूम ही नहीं हुआ था कि बरात में क्या-क्या हुआ। कैसे ब्याह में गड़बड़ हुई और फिर गाड़ी में गोरों ने सबको घेरा···

वैसे भी बस्ती में बड़ी खबर फैली थी कि बरात बहू को लेकर रेलगाड़ी से लौट रही है—यह तो पहली बार हुआ था कि बरात रेलगाड़ी से आए, नहीं तो बैलगाड़ी या मोटर से ही आना-जाना होता था··· आखिर रेलवई के बड़े बाबू की बिटिया है—रेलगाड़ी से ही आएगी, यही तो बात है।

पर घर की बड़ी-बूढ़ियों में काफी सोच-विचार हुआ था—बरात आके रेल-अड्डे पर उतरेगी तो परछन कैसे होगी ? ऐसा तो कभी हुआ

नहीं। वह सीधे आके घर की देहरी पर उतरती है, उसी वखत परछन होता है! असल में यह बात परगना वाली दादी ने उठाई थी—

—यह नया चलन कैसे चलेगा बड़की? तुम्हीं सोचो···आज तक तो कोई बहू रेलगाड़ी में आई नहीं। बहू बस्ती में आए और परछन न हो तो कैसे चलेगा···घर-घराने की लीक होती है कुछ···तुम्हीं सोचो बड़की?

उधर घर में 'नकटा' चल रहा था। लड़कियों का नाटक। ये जमना-पार वालों की कुन्ती बड़ी हंसोड़ थी—उसने बाबूजी का पुराना कोट और प्रवीन भइया का पैजामा पहन के मूछें लगा ली थीं, चेनवाली घड़ी काज में अटका के डाली थी और दूल्हा बन गई थी। जसराना वाली चाची की छुटकी दुलहन बनी थी···और घर में लगातार नकटा चल रहा था, ठीक वैसे ही जैसे वहां ब्याह में हुआ होगा! यहां किसी को मालूम ही नहीं था कि वहां क्या खड़बन्द हो गया!

तभी शोर मचाती लड़कियों की टोली को कन्नौज वाली बुआ ने डांटा था—

—अब बन्द करो हुड़दंग! बहुत हो गया। घर में बहू पहुंचने वाली है, तुम लोग दरवाजे पर लिखना रखो···ऐपन छोरो···दीपक तैयार करो। अभी से सीखोगी नहीं तो कुल का नाम बोरोगी। नई बहू आके देखेगी—ननदों को सऊर तक नहीं!

सारी लड़कियां चहकती चिड़ियों के झुण्ड की तरह उड़ गईं। कन्नौज वाली बुआ की बात घर में चलती थी।

सारी तैयारियां शुरू हो गईं।

रेलगाड़ी आते शाम हो जाएगी···फिर रेल के अड्डे से घर आते एक पहर और बीतेगा। लेकिन अभी परछन वाला मसला सुलझा नहीं था। परगना वाली दादी ने जो बाण छोड़ा था उसे काटने वाला बाण सिरफ हरदोई वाली नानी छोड़ सकती थीं। वैसे रिश्ते से हरदोई वाली नानी का दर्जा दादी से नीचा था, पर वह उमर में बड़ी थीं, इसलिए प्रवीन की अम्मा ने उन्हें ही उकसाया—

—अब आप बड़े-बूढ़े जो तय करेंगे, वही होगा···हम क्या करें!

ुहा था और अपनी गारद को हुकुम दिया था—सारा तलाशी लो ! ाओ ! उस कुत्ता को निकाल के लाओ !

गारद के लोग बन्दूकें लिए, सहमे खड़े लोगों को अपनी बन्दूकों से इधर-उधर करते हुए भीतर घुस गए थे ।

तभी सार्जेण्ट ने हवा में एक और फायर किया था और चीखा था—

—नवीन ! हम हुकुम देता ? सरैण्डर करने का···नई तो इदर सवी मारा जाएगा···सवी तरफ हमारा गारद लगा है···टुम निकल के नई जाने पाएगा ! ···हम बोलता—सरैण्डर करने का ! नवीन ! आई आर्डर यू टु सरैण्डर !

कहता हुआ पाल जूनियर एक तरफ बढ़ा था तो मौका पाकर शान्ता ने मंजू से दवी जवान से पूछा था—

—तुम्हारे नवीन भइया बरात में आए हैं क्या ?

—नहीं···नवीन भइया तो घर भी नहीं आते भाभी···

—कहां रहते हैं वो ?

—कुछ पता नहीं भाभी···अम्मा भी उनका बहुत इन्तजार करती हैं पर नवीन भइया आते ही नहीं···बहुत दिन हुए, तब एक बार आए थे !

तब तक गारद वाले सारी तलाशी लेकर लौट आए थे । उन्हें नवीन कहीं नहीं मिला था । सार्जेण्ट पाल जूनियर ने भी चारों तरफ खोज लिया था, पर उसे भी नवीन कहीं नहीं दिखाई पड़ा था । आखिर अंग्रेजी गारद लाचार होकर रह गई थी और पाल खिसियाना-सा हो रहा था ।

अब जनातियों और बरातियों की समझ में कुछ-कुछ आ गया था । उनमें से बहुतों ने नवीन के बारे में कभी साफ-साफ और कभी उड़ते-उड़ते कुछ सुना था । पण्डितजी ने लाला के कान में फुसफुसाया था—

—इनका छोटा वेटा बागी है ! क्रान्तिकारी···

आखिर पाल जूनियर ने बाबूजी और प्रवीन को आगाह किया था—नवीन को बोलना···सरैण्डर करेगा, नईं तो हम टुम लोग का चमड़ उधेड़ के रख देगा ! समझा !

और पैर पटकता, अपनी नाकामी पर खिसियाता सार्जेण्ट पलट क चल दिया था । उसके पीछे-पीछे उसकी गारद भी चली गई थी । बड़ी

तक उनके बूटों की आवाज़ आती रही थी।

ब्याह का रंग उखड़ गया था। सभी रिश्तेदारों के दिलों में डर समा गया था। लाला चिन्तामणी ने बाबूजी को राय दी थी—

—भावरें तो पड़ गईं…अब सब छोड़ो और पहली गाड़ी से निकल चलो, इसी में भलाई है! नहीं तो सब बराती भाग लेंगे, कोई रुकेगा नहीं!

सबकी यही राय थी—सब डरे हुए थे।

लालाजी की बात पर सबने हामी भरी थी और पहली गाड़ी से ही बरात बहू को लेकर चल पड़ी थी। आखिर रेलवई के बड़े बाबू की लड़की की बरात थी। गाड़ी में जगह और आराम का सब इन्तजाम कर दिया गया था।

जसवन्त ने सीताराम हलवाई को बुलाकर जल्दी-जल्दी पूड़ी-तरकारी का इन्तजाम करवा दिया था। गाड़ी को रोक कर दो हण्डों मे पीने का पानी रखवा दिया था। पत्तलें, सकोरे और कुल्हड़ भरवा दिए थे, और जल्दी-जल्दी अपने आंसू सुखा कर शान्ता को विदा कर दिया था।



गाड़ी चली थी तो शान्ता ने भर आंख चारों तरफ देखा था—अपनी छूटती बस्ती को। एक पल के लिए उसे सूरज का ध्यान आया था, पर वह कहीं नहीं था, तो सच पूछो शान्ता को अच्छा भी लगा था और बुरा भी।

गाड़ी में एक ही डिब्बे में पूरी बरात बैठी थी। बाबूजी को लगा था—बहू फैल-फूटकर बैठ नहीं पाएगी तो उन्होंने उसी डिब्बे के दरवाजे वाले कोने पर चादर बांध कर बहू के बैठने के लिए जगह बना दी थी, और मंजू के साथ उसे वहां बैठा दिया था।

गाड़ी में अब कोई दहशत-डर नहीं रह गया था। पत्तलें बिछ गई थीं और खाना शुरू हो गया था—साथ डिब्बे में बैठे मुसाफिरों को खाने के लिए न्यौता गया था।

खाना शुरू हुआ तो मिसिरजी ने अकल की बात शुरू की—बाबू साहेब ! भई तुम अपने नवीन को समझाओ ! हुकूमते बर्तानिया से टकराना अच्छी बात नहीं हैं ! ऐसे क्रान्ती नहीं होगी ! आज तो बच गए, नहीं तो पूरी बरात की क्रान्ती हो जाती !

प्रवीन को मिसिरजी की बात अच्छी लगी—उसने हुंकारा तो नहीं भरा लेकिन उसने आंखों-ही-आंखों में मिसिरजी को बढ़ावा दिया।

बाबूजी ने अचार का चटखारा लेते हुए धीरे-से मिसिरजी की तरफ देखा और उनकी पत्तल में पूड़ी परस दी, अचार भी रख दिया, जैसे वे बात को टालना चाहते थे।

लेकिन बाकी बरातियों को मिसिरजी की बात पसन्द आई थी, तभी जैसे सहारे के लिए बाबूजी ने इधर-उधर देखा था। दो-चार अनजाने मुसाफिरों से अलग एक बुर्केवाली बेचारी अपनी गठरी लिए कसमसा रही थी। बाबूजी मिसिरजी की नजरों में बार-बार कौंधते हुए उसी एक सवाल से बचने के लिए जैसे कोई रास्ता खोज रहे थे, पर अब मिसिरजी के साथ ही लाला चिन्तामणी भी शामिल हो गए थे, उन्होंने डकार लेकर अपनी धोती का फेंटा ढीला किया और बात फिर शुरू कर दी—

—बात मिसिरजी की ठीक है ! इसमें कुछ रखा नहीं है···अब अंग्रेज बहादुर का राज तो आ ही गया है बाबूजी···सब तरफ सुख-चैन है···खाने-पीने को मिलता है···चोर-डाकू-पिण्डारी का डर नहीं है ! अरे, हमें क्या पड़ी है जो उनसे लड़ें ! क्यों भई सुन्दरलाल, क्या ख्याल है तुम्हारा ?

कहते हुए लाला चिन्तामणी ने हाथ झटकारा तो बुर्केवाली के लगते-लगते बचा। बाबूजी ने देखा तो उन्होंने बुर्केवाली से कहा—

—बहनजी···आपको इधर मर्दों में उलझन हो रही होगी···हमने उधर जनाना बना दिया है अपनी बहू के लिए। आप चाहें तो उधर जा के आराम से बैठ जाएं !

बुर्केवाली औरत ने जैसे राहत की सांस ली, अपनी गठरी उठाई और वह उधर वाले हिस्से की तरफ बैठे-ही-बैठे सरक गई जिधर पर्दा बंधा था।

ए घर भी आए थे। शान्ता एकदम नहीं समझ पाई थी कि 'विलायती त्ते' उसके मुंह से कैसे निकला था और उसके भीतर से बड़ी दादी एक-म कैसे बोल पड़ी थीं···अभी-अभी उसने जो अपनी आवाज़ सुनी थी, ाह उसकी तो नहीं थी, कहीं से बड़ी दादी बोली थीं क्या ? उसके तो शायद सिरफ होंठ हिले थे···

तभी नवीन की आवाज़ से वह जैसे फिर गाड़ी में लौट आई थी—

—मुझे मालूम है भाभी ! सब मालूम है !

—हां ···बड़ी गोलियां चला रहे थे···तुम्हें खोज रहे थे ! मंजू ने दबी आवाज़ में कहा था।

—आप इतना खतरा उठाकर क्यों चले आए लालाजी ? अब शान्ता ने अपनी आवाज़ को पहचाना था।

—भाभी ! खतरों के साथ-साथ घर की···घरवालों की याद भी तो आती है !

—आपकी ज़िन्दगी बहुत कीमती है लालाजी !

—छोड़ो भाभी···नवीन ने कहा था—बहुत भूख लगी है भाभी !

—अरे···मैंने पूछा भी नहीं !

—बरसों से भूखा हूं भाभी ! अम्मा के हाथ का खाना खाने को कब से तरस रहा हूं ! कहते-कहते नवीन की आंखों में पानी आ गया था तो शान्ता ने अपने आंचल से उसकी आंखें पोंछकर उसके मुंह में कौर रख दिया था।

—भैया और बाबूजी से भी मिल लूं ! अगले स्टेशन पर मुझे उतर जाना है।

—पहले आप पेट भरके खा लीजिए !

—अम्मा कैसी हैं मंजू ? खाते-खाते नवीन ने पूछा था।

—तुम्हें बहुत याद करती हैं दादा भइया···कभी-कभी तो बहुत रोती हैं अम्मा।

नवीन ने कुछ नहीं कहा था। वह जैसे सांस का एक गरम बगूला नीचे दबाकर हट गया था। फिर अपनी आंखें पोंछकर बोला था।

—पता नहीं अम्मा से कब मिल पाऊंगा ! खैर···कोई बात नहीं··

देख लिया, समझो अम्मा को देख लिया…
गाड़ी की चाल धीमी पड़ी।
ने कहा—बड़े भइया को बुलाऊं?
—देख…आ सकें तो…बाबूजी भी…
जू परदा हटाकर बाहर निकली तो गाड़ी की चाल एकाएक बहुत
पड़ गई।
—लगता है नहीं मिल पाऊंगा!
स्टेशन कितनी दूर है, यह देखने के लिए शान्ता ने खिड़की से मुंह
निकालकर बाहर देखा, तो एकदम सहम गई—
—लालाजी…पुलिस! स्टेशन पर…
गाड़ी स्टेशन पर पहुंच रही थी। एकदम नवीन ने देखा, चौकन्ना
हुआ और भाभी के पैर छूकर बोला—
—अच्छा भाभी…ज़िन्दा रहा तो फिर मिलूंगा। अम्मा को मेरा
प्रणाम कह देना, बाबूजी और भैया को भी…कहते हुए नवीन ने धीमी
पड़ती गाड़ी का दरवाजा खोला तो उसे सहारा देकर उतार देने के लिए
शान्ता ने बांह बढ़ाई। उस हड़बड़ाहट में नवीन के घुटने सीढ़ियों से
टकराए, पर शान्ता की बांह के सहारे ने उसे बचा लिया…गाड़ी अभी
रुक ही रही थी कि शान्ता ने नवीन को सहारा देकर उस तरफ उतार
दिया था, जिस तरफ पटरियों की कैंचियां बिछी थीं।
नवीन लड़खड़ाता उतरा तो उसके हाथ में शान्ता की सोने की
चूड़ियां उतरती चली आईं…
—भाभी…ये…
—काम आएंगी…
बस, इतना ही वह कह पाई थी कि गाड़ी आगे सरक गई थी और
नवीन ने पीछे छूटते हुए एक पटरी को फलांग के पार किया था—भागने
के लिए।
तभी डिब्बे में तमाम गारद घुस पड़ी थी।
हाथ में उसी तरह पिस्तौल ताने फिर पाल जूनियर खड़ा था।
—अब नहीं बचेगा! पाल जूनियर चीखा था और तेज आवा

देखता हुआ वह आगे बढ़ा था और उसने पर्दा पलट दिया था—मंजू की चीख निकल गई थी—

—दादा भइया !

—प्रवीन और बाबूजी चौंके थे।

बरात के सब लोगों ने एकाएक देखा था—नई ब्याही बहू शान्ता घूंघट खोले सार्जेण्ट के सामने खड़ी थी—

—क्या है ? वह सार्जेण्ट पर चीखी थी।

—उधर हटो ! सार्जेण्ट शान्ता पर चीखा था।

—नहीं हटूंगी ! शान्ता चीखी थी।

तभी सार्जेण्ट ने बाज की तरह तेज नजरों से खिड़की के पार देखा था और गोली चलाई थी—बाहर···उस तरफ, जिस तरह नवीन उतर कर भागा था।

गोली की आवाज़ गूंजती चली गई थी। और शान्ता का सीना धक्-से रह गया था।



एक दिन पहले से घर पर बहू के स्वागत की तैयारियां थीं।

रेलगाड़ी की रफ्तार ज़्यादा थी, खबरों से, इसलिए घर पर किसी को मालूम ही नहीं हुआ था कि बरात में क्या-क्या हुआ। कैसे ब्याह में गड़बड़ हुई और फिर गाड़ी में गोरों ने सबको घेरा···

वैसे भी बस्ती में बड़ी खबर फैली थी कि बरात बहू को लेकर रेलगाड़ी से लौट रही है—यह तो पहली बार हुआ था कि बरात रेलगाड़ी से आए, नहीं तो बैलगाड़ी या मोटर से ही आना-जाना होता था··· आखिर रेलवई के बड़े बाबू की बिटिया है—रेलगाड़ी से ही आएगी, यही तो बात है।

पर घर की बड़ी-बूढ़ियों में काफी सोच-विचार हुआ था—बरात आके रेल-अड्डे पर उतरेगी तो परछन कैसे होगी ? ऐसा तो कभी हुआ

हमें का मालूम था कि बरात रेल-अड्डे पर उतरेगी···नई रीत का सवाल नहीं है···पर किया क्या जाए ?

आखिर हरदोई वाली नानी ने परगना वाली दादी को दर्जे के हिसाब से सम्मान देते हुए कहा—

—बहिना···बात तो तुम्हारी ठीक है, पर गली पतली होती है तो भी बहू मोटर-गाड़ी से पहले कहीं और उतरती हैं तब द्वारे पर आती हैं।

यह बात सब को जंच गई ! अब उतना सब कैसे निभाया जा सकता है ?

—तो फिर सवारी का इन्तजाम किया जाए···बहू पैदल तो नहीं आएगी !

—हां···यह तो जरूरी है !

—और कुछ लड़कियों को कलश ले के वहीं भेज दिया जाए···रस्ता किछ के बहू को लेती आएं !

यही हुआ। लड़कियां सज-धज के पहले से ही पहुंच गईं। सवारियों का इन्तजाम भी हो गया। तभी गांव के कहार आ गए—

—मालकिन ! चाहे दुनिया ऊपर-से-नीचे हुइ जाए···किन्नो बहू तो पालकी में आएगी।

—तेरी पालकी में खटमल तो नाहीं हैं ? हरदोई वाली नानी ने जानकारी चाही और टीप जड़ दी—जग्गू की बहू जब ब्याह के आई तो पालकी पूरे सात कोस चली थी···अब पालकी में खटमल ! बहू बेचारी का करे ? बोलो···रह-रह के पांसा बदले···बस, बदनामी होय गई···बहू को लग पे बैठना नाहीं आता ! हां···कित्ती बुरी बात थी···एक दफा नाम निकल जाए तो कहीं सुधरता है का ?

खैर···सब ठीक हो गया।

जब बरात बहू को ले के रेलगाड़ी के अड्डे पर उतरी, तो पालकी थी, सवारियां थीं, बाजे वाले थे, जल के छोटे-छोटे कलश लेके सजी-धजी लड़कियां थीं !

हमारी ज़िन्दगी में दखल देने लगे···यह हमें किसी कीमत पर मंजूर नहीं करना चाहिए !

—आप ठीक कह रहे हैं मिर्जा साहब ! लेकिन किया क्या जाए ?

—इस पर सोचना होगा !

—रेलगाड़ी में भी उन्होंने घेरा था !···बहू तो शेरनी की तरह घूंघट उठाकर खड़ी हो गई थी···सार्जेण्ट सकते में आ गया था ! लेकिन हम कर क्या सकते थे ? बाबूजी ने कहा।

—वही, जो आपका बेटा नवीन कर रहा है ! खैर···अभी आप जाइए···फिर बात करेंगे···

मिर्जा साहब ने बाबूजी को विदा कर दिया।

वे घर पहुंचे तो रस्में चल रही थीं।

घर का द्वार सजा हुआ था। मंगल-कलश रखे हुए थे। आम की बन्दनवार बंधी थी। लड़कियों ने ऐपन से लिखने रखे थे। आटे का चौक पुरा हुआ था।

शान्ता और प्रवीन गांठ जोड़े द्वार पर खड़े थे और अम्मा दीपकों का थाल लिए उनकी परछन कर रही थीं। सभी औरतें मंगलगान गा रही थीं···लड़कियां चुलबुला रही थीं—वे अपनी भाभी का घूंघट उठा-उठाकर देख रही थीं। उसका एक-एक गहना छू-छू के परख रही थीं। तभी कन्नौज वाली बुआ ने फिर डांटा था···

—क्यों परेशान करती हो बेचारी को।

तभी अम्माजी ने परगना वाली दादी से पूछा था—

—अब और क्या करना है ?

—अब मूसर से स्वागत करो बहू का !

पीछे खड़ी नाइन चाची ने सजा हुआ मूसर अम्मा को पकड़ा दिया था। अम्मा ने मूसर घुमा के बहू का स्वागत किया तो लड़कियां खिल-खिला के हंस पड़ीं—

—भाभी ! तैयार हो जाओ···मूसर से धान कूटना होगा···चक्की

से आटा पीसना पड़ेगा…

तभी किसीने छोका और कन्नौज वाली बुआ बोलीं—

—नाक दबा…नहीं तो नाक तोड़ दूंगी !

—दोनों को कुएं पे ले जाओ ! परगना वाली दादी ने हांक लगाई।

—कुए पर ? लड़कियों की समझ में नहीं आया।

कुआं सजा हुआ था। उस पर भी दिए जल रहे थे। सूप में अक्षत लिए नाइन चाची खड़ी थीं।

शान्ता ने घूंघट के भीतर से देखा था, उसकी समझ में ही नहीं आया था कि उसकी सासजी यह क्या कर रही थीं। तभी दादी ने उससे कहा—बहू ! तेरी सास कुएं में कूदने आई है। का पता बहू के राज में इन्हें आराम मिले न मिले…अपनी सास को वचन दे बेटा…कि इज्जत से रखेगी… बुढ़ापे में आराम देगी…बड़े-बूढ़ों का ख्याल रखेगी…वैसे ही इस कुल को चलाएगी जैसे तेरी सास ने चलाया है…छोटों को प्यार करेगी, बड़ों का लिहाज…और अन्नपूर्णा की तरह सबको खिला के खाएगी।…दे बेटा…सारे वचन सास को दे। कहते-कहते हुए दादी ने प्यार से बहू के सिर पर हाथ फेरते हुए उसे अम्मा के चरणों में झुका दिया।

शान्ता ने सासजी के पैर छूते हुए कहा—अम्माजी…वचन देती हूं…इस कुल में जो हुआ है, वही हमेशा करूंगी…

—चल…अपनी अम्मा को गोदी में उठा। दादी ने प्रवीन के कन्धे पर हाथ मार कर कहा—और वचन दे अपनी अम्मा को। घर-बार के मामले में अपनी अम्मा का कहा मानेगा…कभी बहू के कहे पे नहीं चलेगा।

प्रवीन हस पड़ा।

—हंसता का है रे…दादी ने टोका—वचन दे और उठा इन्हे।

प्रवीन ने वचन दे के अपनी अम्मा को गेहूं की बोरी की तरह उठा लिया। शान्ता ने नाउन चाची से सूप लेकर कुए पर अक्षत चढ़ाए, पूजा की और बहू-बेटा अपनी अम्माजी को लेकर फिर द्वार पर पहुंचे तो देखा बहनें घर का द्वार रोके खड़ी थीं।

—भाभी। ऐसे घर की मालकिन नहीं बन पाओगी···हमें भी वचन दो—यह घर हमेशा हमारा रहेगा···हमसे हमारे भइया, बाबूजी और अम्मा को कभी अलग नहीं करोगी।

छोटी मंजू भी खड़ी-खड़ी मुस्करा रही थी।

—हां, बोलो भाभी।

शान्ता ने हां में सर हिलाया।

—तो हमारा नेग दे दो···और अपना घर सम्भालो।

शान्ता ने बड़े प्यार से सबको देख-देख के अपना एक-एक गहना उतारना शुरू किया—

—यह सब तुम्हारा है नन्दजी···

—बस भाभी। हमें सब मिल गया और सारी ननदों ने शान्ता को गोदी में उठा लिया···और भीतर चल दीं।

तभी तालियां चटकाते और ढोलक बजाते हिजड़े आ गए, उन्होंने छोटे मण्डप में घेरा डाल के नाचना शुरू कर दिया। तालियां चटका-चटका के कमर तोड़-तोड़ के हिजड़ों ने समां बांध दिया, उन्होंने शान्ता को भी बहुत छेड़ा। लड़कियां तो हंसती एक तरफ दुबक गईं, कुछ मनचले रिश्तेदार भी बाहर से भीतर आ गए—उन्होंने बहू पर रुपये निछावर कर-कर के हिजड़ों के नाच में और जान डाल दी।

हिजड़े थिरक-थिरक के और घाघरा उठा-उठा के गाने लगे तो कुछ लोग थाप देने लगे। कन्नौज वाले फूफाजी ने मौज में आकर मचका लिया, तो हिजड़ों ने उन्हें अपने बीच में खींच लिया। बुआ को फूफा का नाचना नहीं सुहाया, तो उन्होंने फूफा को खींचा, तो हिजड़ों ने फूफा की बांह पकड़ ली—

—अरे बुआ। ये तुम्हारे काम के कभी नहीं रहे। ये तो शुरू से हमारी जात के थे। आज हम इन्हें ले जाएंगे···तुम कोई दूसरा देख लो। हां। तब तक हम इन्हें नाचना गाना सिखा के तुम्हारी दूसरी शादी पे ले आएंगे···हां···हंसी का फव्वारा छूट पड़ा। एक ने ताली चटका के

चुटकी ली।

बुआ बेचारी शर्माती भीतर भाग गई।

—अरी ओ बुआ! ये तो हमारे काम के भी नहीं रहे।

तभी हंसती शर्माती बुआ ने अपनी धोती की खूंट से रुपया खोला, निछावर किया और अपने पति को छुड़ा लिया।

—कुछ तो शरम किया करो।

—शरम काहे की। भतीजे की शादी है। कहते हुए फूफा ने धोती से अपना मुंह पोंछा और बहू पर एक रुपया निछावर करके बाहर चले गए।

तब हिजड़ों ने बहू को छेड़ना शुरू कर दिया—

दइया रे दइया···

बन्ने ने मारा अइसा तीर—

बन्नी के उठी पीर···

ऐसा तीर···

पहली ही रात मे—

दइया रे दइया···

बन्ने ने मारा अइसा तीर—

हिजड़े इशारे कर-कर के नाचने लगे तो अम्मा ने डांटा—

—बहू बहुत थकी है। छोड़ा उसे।

आखिर उन्होंने नाच बन्द करके बहू को घेर लिया—

—ऐ बहू बन्नो। आज की तारीख से नौ महीने गिन लेना। ठीक उसी दिन हम मुन्ना के लिए नाचने आएंगे। हां।

फिर हिजड़ों ने बहू को आशीर्वाद दिए—एक बुजुर्ग हिजड़े ने चलते-चलते कहा—

—बहू। हम तो तुम्हारे सुख का खाते हैं। तुम सुखी रहो हमारा भी पेट भरता है···तुम्हारा सुहाग अचल रहे बेटा। जब तलक तुम फलती-फूलती रहोगी···हमारे ये बूढ़े पैर नाचते रहेंगे·· तुम्हारे सुख से हमारा पेट बंधा है बहू·· ऊपर वाला तुम्हें सब कुछ दे।

कहते हुए बुजुर्ग हिजड़े ने अपने घाघरे मे बंधी पोटली की मिट्टी खोल के अम्माजी के हाथ में थमा दी—

—पतुरिया के दरवाजे की पाक मिट्टी है।

अम्माजी ने वह मिट्टी माथे से लगा ली। बहू के माथे से भी छुआ दी और पत्तलों में खूब खाना भरके, तरकारी, मिठाई-नमकीन देकर हिजड़ों को विदा कर दिया, और लड़कियों को समझाया—

—अब बहू को कमरे में पहुंचा दो···जरा फूल-फैट के बैठेगी। तब से बंधी बैठी है···ले जाओ···

शैतान लड़कियों की आंखों में तरह-तरह के इशारे तैरने लगे। उनकी आंखों में चमक आ गई।

—आओ भाभी। भइया भी कब से राह देख रहे हैं।

—अरे भाभी भी तड़प रही होगी···छुटकी ने उसे छेड़ा।

आखिर सबने ले जाके शान्ता को कमरे में पहुंचा दिया। कमरा गेंदे और कनेर के फूलों से सजा था।

शान्ता ने हाथ-पैर ढीले करके थोड़ी आराम की सांस ली—अजीब सी नशीली थकान पूरे बदन पर छाई हुई थी—गहनों और कपड़ों का इतना बोझ तो उसने कभी उठाया नहीं था। एक पल के लिए शान्ता ने पूरी आंखें खोल के कमरे को देखा था और अचरज में पड़ी सोचती रह गई थी—यह सब कैसे एक ही दिन में अपना हो गया। पराया तो कुछ भी नहीं रह गया। एक ही दिन में वंश बदल गया और सब कुछ ऐसा लगने लगा जैसे सदियों से अपना हो। घर-द्वार अपना लगने लगा···कुआं अपना हो गया···आंगन की ईंटें पहचानी लगने लगीं। अम्माजी के पैरों के सीप से नाखून कितने सुन्दर लग रहे थे···जो पैर छूते समय देखे थे—बाबूजी की छड़ी के नीचे लगी पीतल की ठोकर भी कितनी अपनी लगी थी, जिसमें दूब के दो तिनके उलझे हुए थे। यहां भी वैसे ही चीटियां थीं और उतने ही बड़े चींटे।

···जो मण्डप में चढ़ाई गई मिठाई के आस-पास घूम रहे थे। कलश पर आम के पत्ते और सकोरे में भरे जौ भी वैसे ही थे। गोबर से लिपा मण्डप और बांस की लचीली हरी डंगाल और उसमें पीतल की वैसी ही

घंटियां और घंटियों में वैसा ही लाल चीर था—जिसमें हल्दी की गांठ, सुपारी और लोहे का छल्ला बंधा होगा। झींगुर भी वैसे ही हैं—और दरवाजे की संध में ललेरी ने वैसा ही छोटा-सा मिट्टी का घर चिपका रखा है···

यह इतना गाढ़ा अपनापन कैसे समा गया, मन में। ये सारी आवाजें इतनी अपनी कैसे हो गईं— पलक झपकते ही। सारी ननदें उसी तरह वैसे हंसती हैं, जैसे वहां बहनें हंसती थीं। हंसी की आवाज में कोई फरक नहीं। सबके गहने उसी तरह खनकते हैं, सब सुहागिनों के पैरों में वैसा ही महावर है और यहां की नाउन चाची की अंगुली भी उसी तरह लाल है, जैसे घर में थी, जिससे उन्होंने सुहागिनों के महावर लगाया था और लोढ़े पर महावर की वही लकीरें सूख गई थीं। लगता है यहां की इक्कीस या तेइस सुहागिनें होंगी, सो बाइस या चौबीस करने के लिए लोढ़े को महावर लगाया होगा।

बच्चे भी उसी तरह रो रहे हैं। उसी तरह नाक सुड़क रहे हैं। उसी तरह डांट और प्यार पा रहे हैं। कमरे की दीवारों में भी उतनी ठण्डक है···बाहर वैसा ही अंधेरा है, उसी रंग का। पेड़ में उसी तरह पखेरू बसेरा ले रहे हैं। घर में उसी तरह चूहे दौड़ रहे हैं···

शान्ता न जाने कहां खो गई थी। क्या ब्याह होते ही इतनी बड़ी और सुन्दर दुनिया मिल जाती है। यह शरीर फूल की तरह खिलने लगता है···यही मन इतना बड़ा हो जाता है ''अभी 'उनसे' तो मिली भी नहीं है, बस देखा भर है···

तभी उसका ध्यान टूटा। कमरे में अजीब-सी आवाजें आ रही थीं। उसने कान लगाकर सुना ''शायद किसी बक्से में से···पर बक्से तो सभी बन्द हैं। उसने दरवाजे की तरफ देखा, आहट ली। लगा जैसे दरवाजे पर कुछ पैर चल-फिर रहे हैं···शान्ता ताड़ गई—ननदें किसी शैतानी की ताक में थीं···उनके अपनी अम्मा, चाची या भाभियों से मांगे हुए बिना नाप के गहने जरा ज्यादा ही खनक रहे थे। कच्ची उमर से अभी धोती पहनने का सऊर नहीं था, इसलिए उनसे पल्ले नहीं सभल रहे थे और कैलासन की धोतियों के सरकते-संभलते पल्लों की सरसराहट भी दरवाजे

से आ रही थी।

तभी एक ज़ोर की आवाज़ हुई—खटाक्। और शान्ता एकदम चौंक कर उछली—पता नहीं क्या हुआ था। वह सहम गई थी···और खटाक् की आवाज़ के साथ ही कोने में रखे बड़े टीन के बक्से का पल्ला खुला था और उसमें से कूद-कूदकर बिल्ली के तमाम बच्चे पूरे कमरे में म्याऊं-म्याऊं करने लगे थे···

तभी दरवाज़े पर ज़ोर की खिलखिलाहट हुई थी और चिड़ियों के झुण्ड की तरह सारी ननदें एकदम घुस पड़ी थीं—

—भाभी। यह क्या। अपने साथ बच्चे भी लाई हो मायके से···क्यों?

शान्ता को भी हंसी आ गई थी।

—बीबीजी···यह तो आप ही के भाई लगते हैं···सबसे तो मिलवाया, उनसे भी मिलवा दो···शान्ता ने चुटकी ली—

— भाई-बन्द तुम्हारे होंगे भाभी···यह सब तो मैनपुरी के लगते हैं। एक ननद ने मज़ाक किया।

—तो पसन्द कर लो···जिसे जो पसन्द हो, उसीसे ब्याह रचा देंगे। शान्ता भी कहां हारने वाली थी।

—भाभी से जीतना मुश्किल है। इनसे तो भइया ही जीतेंगे। एक ननद ने कहा, तभी दूसरी ने आवाज़ लगाई—

—हटो चलो, भइया आ रहे हैं।

दरवाज़े के बाहर बरामदे में प्रवीन के जूतों की आहट सुनी तो शान्ता का दिल धड़कने लगा। वह समझ ही नहीं पाई कि क्या करे। लाज के मारे उसने अपने को एकदम संभाला। घूंघट नीचा किया, चटाई पर बैठकर उसने अपने हाथ-पैर ढांक लिए···पर जैसे उनमें जान ही नहीं रह गई थी···सांसें एकदम तेज़ हो गई थीं और पसीना छूटने लगा था।

तभी दरवाज़ा भड़ाक से बन्द हुआ और प्रवीन के लड़खड़ाते हुए पैर भीतर आए। शान्ता एकदम सकते में आ गई और कड़कड़ाती आवाज़ में इतना ही कहा—

—जूते खोलो।

शान्ता के हाथ कांपने लगे। वे पैर भी तो नहीं थम रहे थे। वह कुछ

सोच ही नहीं पाई, कि प्रवीन ने नशेड़ी की तरह आवाज चबाते हुए बकना शुरू कर दिया—

—तुम्हारे बाप ने हमारी नाक कटवा दी। बरातियों की देखभाल भी नहीं कर सके। शरबत पिलाया था तुम्हारे बाप ने—साला गधे का मूत। रेलवई के बड़े बाबू बनते हैं। मिठाई और नमकीन—हलवाई ने नहीं, तेली ने बनाया था।

शान्ता की तो सांस ही उखड़ गई ''आंखों के सामने अन्धेरा छाने लगा। उसकी आवाज ही नहीं फूट पा रही थी। समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्या बोले, क्या कहे? तभी प्रवीन ने गुस्से से पैर पटका था—

—यह शादी नहीं, हमारी जगहंसाई हुई है। शान्ता ने कांपते हाथों से प्रवीन का पैर पकड़ लिया था।

—छोड़ो, मेरा पैर। इन पैरों को छूने लायक तुम नहीं हो। प्रवीन की आवाज उसे तीर की तरह लगी थी और वह उसके घुटनों को जोर से पकड़ के बुरी तरह रो पड़ी थी'''

प्रवीन ने उसे एकदम अपनी बाहों में भरकर उठा लिया था—

—अरे भाभी। इतने में घबरा गईं।

और एक बार फिर दरवाजा भड़ाक् से खुला था और ननदें झुण्ड की झुण्ड भीतर आ गईं थीं'''और छुटकी ननद लम्बा कोट और जूते उतार कर अपनी भाभी को छेड़ रही थी—

—भइया से दबना मत भाभी। पहली रात भइया ने दबा लिया तो ऐसे ही रोती रहोगी। समझी। कहकर उसने अपनी भाभी को प्यार कर लिया था।

- अब शान्ता की जान में जान आई। भीगी आंखों में भी मुस्कराहट आ गई थी और उसने दरवाजे के बाहर देखा था—अम्माजी, बुआजी, चाची, नानी—सभी बड़ी-बूढ़ियां मुंह में धोती का पल्ला दबाए या मुंह पे हाथ रखे हंस रही थीं।

—अच्छा लड़कियो, जाओ। कहते हुए अम्मा ने सबको भग[illegible] था और इटावा वाली दुल्हन को बुलाया था—

—दुल्हन···तुम थोड़ी देर वहू के पास वैठो···

वह रिश्ते से प्रवीन की वड़ी भाभी होती थीं।

—देवरानी···यह गहने उतार लो···नहीं तो चुभेंगे। इटावा वाली भाभी ने पहला सवक सिखाया था।

फिर धीरे-धीरे उन्होंने उसे छोटी वहन की तरह दुनियादारी की सारी वातें इशारों-तरकीवों में हंस-हंस के वता दी थीं। शान्ता को शरम भी लगी थी। वह सिर ही नहीं उठा पाई थी, जेठानी की आंखों में देख ही नहीं पाई थी। कमरे से जाते-जाते इटावा वाली ने इतना और वता दिया था—सुनो देवरानी। सवेरे सवसे पहले उठना। किसी के जागने से पहले। हाथ मुंह धोके, अच्छी तरह नहा के पहले तुलसी पे जल चढ़ाना··· फिर सव वड़े-वूढ़ों के पैर छूके आशीर्वाद लेना···पति तुम्हारा भरतार है देवरानी···पर यह पूरा घर तुम्हारी जीवन-नैया की पतवार है।···

कहकर इटावा वाली भाभी ने उसे वहुत प्यार से थपथपाया था और चली गई थीं—जाते-जाते कहती गई थीं—

—मैं चूल्हे पे गंगाजल चढ़ा दूंगी···नहाने के लिए गरम पानी ले लेना। कोई दिक्कत हो तो चुपके से आके हमें जगा लेना···सामने वाली कोठरी में सोऊंगी···शरमाना मत—तुम्हारे जेठजी को वाहर सुलाऊंगी आज, आदमियों के साथ···अच्छा···।

2

एक आधी रात में शान्ता की दुनिया कितनी गहरी और कितनी ऊंची हो गई थी, कहां से कहां तक फैल गई थी। अनदेखे, अनजाने—धरती में फैलती जड़ों की तरह।

इतनी-सी देर में सृष्टि के सारे रहस्य उसकी मुट्ठी में आ गए थे—उसे अव अच्छी तरह मालूम हो गया था कि नदियां कैसे फूटती हैं, कलियां निकलने से पहले कहां छुपी रहती हैं···लकड़ी में आग कहां दवी रहती है, इमली में खट्टापन कहां से आता है, गन्ने में रस कैसे समाता है, यह

ब्रह्माण्ड क्यों चमकता है···बालियों में दाने कैसे पड़ते हैं···भात में सोंधी सोंधी महक क्यों आती है···दर्द में मिठास कैसे पैदा होती है और सांसें के ताने-बाने में जिन्दगी की चादर कैसे बुनी आती है···यह धरती कितने सहती है और क्यों सहती है···

सुबह अभी हुई नहीं थी कि दोनों उठ गए थे—प्रवीन और शान्ता—सच पूछो तो दोनों सोये ही नहीं थे। प्रवीन चुपचाप गंगाजी की तरफ टहलने निकल गया था और शान्ता नहाने।

बदन में अलसाया-सा दर्द था और एक अजीब-सा नशा। शान्ता ने देखा—चूल्हा तो बुझ गया था पर गंगाल में चढ़ा पानी गरम था। उसने जल्दी-जल्दी नहाया, तुलसी को पानी चढ़ाया और कपड़े बदल कर तैयार हो गई। तब तक सभी जाग गए थे। पर उठा कोई नहीं था। शान्ता को खुद किसी के सामने पड़ते शरम लग रही थी। उसने इटावा वाली जेठानी की कोठरी में देखा—वे अभी सो रही थीं, उनका एक दूध अधखुला था, फतोई ऊपर सरकी हुई थी और मुन्ना का गुदारी अंगुलियों वाला मासूम छोटा-सा हाथ उनके दूध पर रखा हुआ था।

शान्ता अपने कमरे में चली गई।

खिड़की में उसने देखा—बाबूजी छड़ी लिए, दातौन करते शायद गंगाजी की तरफ जा रहे थे। पीछे से बिलकुल प्रवीन की तरह लग रहे थे।

तभी बीती रात की सनसनाहट एक झोंके की तरह उसके सारे शरीर को झकझोरती निकल गई। और सुबह-सुबह कही हुई उनकी बात उसे याद आई। प्रवीन ने उससे कहा था—

—देखो···नवीन अपनी जान पर खेल कर तुमसे मिलने आया था···उनके मन में जरूर प्यार उमड़ा होगा···।

—मैं तो सोच भी नहीं सकती थी कि वो इस तरह मिलने आएंगे। मंजू बीबी पास न होतीं तो मैं पहचान भी न पाती···

—यही क्या कम है कि वह आया···नहीं तो चार बरस हो गए, उसने घर का रास्ता नहीं देखा···अब शायद तुम्हारा मोह उसे बांध

सके !

—मैं तो आपके वहाने ही सबसे बंधी हूं···

—वह शायद फिर आए···उससे ज्यादा मिलने और बात करने व मौका कभी मिलेगा नहीं, लेकिन उसे किसी तरह रास्ते पर ले आओ- मुझे मेरा भाई मिल जाएगा, तुम्हें तुम्हारा देवर ! कहते-कहते प्रवी मोम की तरह पिघलने लगे थे। शान्ता का मन भी गीला हो आया था

—वहीं गाड़ी में बैठा था···मैंने बस बुरके वाली को देखा भी था कुछ अटपटा भी लगा था···अकेली औरत कैसे सफर पर निकल पड़ी·· लेकिन अच्छा हुआ, हम लोग नहीं समझ पाए, नहीं तो वह जरूर पकड़ जाता या मारा जाता···

—गाड़ी रुकते-रुकते उस गोरे ने गोली तो चलाई थी...

—तब तक नवीन बहुत दूर जा चुका था। मैंने देखा था।

—अच्छी तरह देखा था आपने !

—हां···

—भगवान का बहुत उपकार है हम पर !

प्रवीन और ज्यादा कुछ नहीं बोले थे। पौ फूट रही थी, सो अंगोछ लेकर गंगाजी की तरफ चले गए थे, और शान्ता अपने हाथ में पड़ी व खरोंच देखती रह गई थी—जो एक लाल लकीर की तरह अब भी मौजू थी।

घर में सुबह की चहल-पहल शुरू हो गई थी। शान्ता घूंघट नीच करके सबसे पहले अम्मा के पैर छूने गई थी, तो अम्मा उसे खुद लेक पहले दादी और नानी के पैर छुआने ले गई थीं।

तभी घर में हुड़दंग शुरू हो गया था—सब तरफ से शान्ता पर ही बौछारें हो रही थीं—

—भाभी ! मंजन देना···

—छोटी भाभी ! लोटा उठाना···

—पानी देना नई भाभी !

—तुम्हें अम्मा बुला रही हैं छोटी चाची !

—नई भाभी···बड़ी भाभी···बड़ी भाभी को गरम दूध चाहिए···अभी !

—भाई···पहले मट्ठा दो···

—मक्खन दो न नई चाची···

—भाभी सुनो न···पहले हलवा बनाओ···

शान्ता समझ ही नहीं पा रही थी—कि तभी अम्मा ने उसे बचा लिया आकर।

—सब तुझे परेशान कर रहे हैं बहू ! सुनो सब ! पहले दिन बहू घर का कोई काम नहीं करेगी ! चल बहू—तू मेरे साथ आ···

अम्माजी उसे बांह पकड़कर ले गई थीं—चल, पहले तू कुछ खा ले।

इटावा वाली भाभी ने चटाई बिछा कर सबके बैठने का इन्तज़ाम कर दिया था। सुबह की धूप अच्छी लग रही थी। घर की सब औरतें एक साथ बहू के साथ नाश्ता करने बैठी थीं।

सुबह की धूप बहुत गुनगुना थी—गरम हलवे की महक पूरे आंगन में छाई हुई थी। इटावावाली भाभी ने बड़ी कड़ाही में खासतौर से हलवा बनाया था। वैसे बाबूजी ने बजरिया वाली दुकान से जलेबियों और खस्ता कचौड़ी के लिए पहले ही बोल दिया था, वैसे भी प्रवीन की ससुराल से आया खाने का सामान घर में भरा हुआ था।

परगना वाली दादी ने तभी हुकुम दिया—

—मैं तो ससुराल से आई पूड़ियां खाऊंगी—तरकारी भी गरम कर दे बहू !

असल में सबको बासी पूड़ियां अच्छी लगती थीं—सब उसी के लिए उधया पड़े।

अम्मा ने फौरन सब सम्भाल लिया——

—मैं अभी सबको देती हूं !

और उन्होंने बड़े चूल्हे से तमाम कोयले बाहर खींच लिए और दो बड़े चिमटे उन पर रख दिए। लोहे की कड़ाही में गरम करने के लिए ऊपर तरकारी चढ़ा दी—

—ले इटावा वाली, तू तरकारी चला, मैं पूड़ियां सेंकती हूं।

बासी पूड़ियों की झलियां पास खिसका ली गईं और चिपकी हुई पूड़ियों को छुड़ा-छुड़ाकर चिमटे के ऊपर लकीर में गरम होने को रख दिया गया। कोयले दहक रहे थे।

पूरे घर में महक भर गई थी। मेथी की तरकारी के भुनते छिलके वाले आलू और हरी मेथी की महक। चिमटों पर सिकती पूड़ियों से झरती परतों के जलने की महक और कचौड़ियों में भरी दाल, सौंफ और हींग की भुनती हुई गंध। घर के कपड़ों में सवेरे-सवेरे आती धुली हुई गंध। धुले और कढ़े हुए सभी के बालों से फुटती हुई महक, मीठी-मीठी महक। शान्ता को अपने बालों से भी एक अजीब-सी महक आती थी—धोती के भीतर ढके घुन्ने हुए बालों से छोटी-छोटी मोतियों जैसी ठण्डी बूंदें झर रही थीं, जिससे उसकी कमर के नीचे की धोती एक गोल घेरे में भीग गई थी और उसे ठण्डी-ठण्डी लग रही थी।

अम्मा जी ने सबके लिए पूड़ियां-कचौड़ियां सेंक दी थीं और तरकारी, हलवा भर-भर के सबके लिए भिजवा दिया था। उनके हाथों से घी की सोंधी महक आ रही थी, जब उन्होंने शान्ता को चाबियों का गुच्छा पकड़ाया था—

—ले बहू! अपना घर सम्भाल···

चाबियों का गुच्छा बड़ी मीठी आवाज़ में खनका था। लोहे की चाबियों में कितनी प्यारी आवाज़ थी।

शान्ता का मन उन चाबियों के गुच्छे की आवाज़ से भर गया था—उसने अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से अम्माजी को देखा था—अम्मा की आंखों में अद्भुत-सा विसर्जन उसे दिखाई दिया था—एक ऐसा विसर्जन जो उसे कभी-कभी दादी की आंखों में दिखाई पड़ता था। शान्ता का मन तैयार हुआ और पुराने घर की ओर लौट गया था—उसी गांव वाले घर में, जहां बड़ी दादी के उठने-बैठने और देखने में वही लोच दिखाई पड़ती थी जो इस वक्त अम्मा में भरी हुई थी।

शान्ता को अचरज हो रहा था कि कभी-कभी यह सब एक-सा कैसे दिखाई देने लगता है। एक में से दूसरे की शक्ल कैसे झांकने लगती है—

आंखों मे वही पहचान और ममता कैसे फूटने लगती है···यह एक-सा-पन कैसे आ जाता है !

मुण्डेर वाली धूप सामने की दीवार पर पताका की तरह कटी हुई फहरा रही थी। अलगनी पर फैले बच्चों के कपड़ों की छायाएं दीवार पर और बड़ी हो गई थीं और उन कपड़ों पर भी मैल के वैसे ही निशान थे और बटन भी उसी तरह टूटे हुए थे जैसे उसके घर मे होते थे।

तभी खखार के बाबूजी भीतर आए। उनकी छड़ी और जूतों की आवाज़ भी साथ ही साथ आई। उनके खखारते ही बहुओं के हाथ सिर पर चले गए और सबके छोटे-छोटे घूंघट निकल आए और आंखें नीचे बिछी दरी और चटाई पर टिक गईं।

बाबूजी ने आते ही ऐलान किया—

—देखो भई···हमारे मुकदमे की आज तारीख है। हमें तो अदालत जाना है···देखें आज क्या होता है। भगवान ने चाहा तो सब अच्छा ही होगा।

शान्ता ने मुकदमे की बात पहली बार ही सुनी थी। उसका घूंघट भी सबसे ज्यादा निकला हुआ था और आंखें भी सबसे ज्यादा झुकी हुई थीं।

रात मे अभी तक उसने पूरा घर भी नहीं देखा था। तभी बाबूजी ने उससे कहा था—

—नई बहू।

परगना वाली दादी ने शान्ता को हलके से कोहनी पर दबा के बताया कि कुछ उससे कहा जा रहा है। तब बाबूजी ने आगे कहा—

—नई बहू ! यह पूरबवाली बड़ी दीवार देख ले बेटा ! इसी दीवार ने हमारी धूप रोक रखी है। बरसों से इसी हवेली का मुकदमा चल रहा है···उसी की तारीख है आज···

तब शान्ता को पूरा किस्सा पता चला था।

शान्ता ने बड़ी ऊंची और पुरानी सरंजों वाली ईंटों की दीवार को झीने घूंघट में से देखा था। पहाड़ की तरह वह दीवार खड़ी थी जिसकी वजह से घर की धूप सचमुच बट गई थी। उस दीवार में नक्काशीदार किवाड़ों की एक छोटी खिड़की थी—जो इस वक्त बन्द थी।

यह हवेली इस पुराने परिवार की थी। पर हवेली वाली बड़ी अम्मा उन पर जबरन कब्ज़ा कर रखा था और बाबूजी के घराने को इस पिछवाड़े वाले घर में रहने को मजबूर कर दिया था। बरसों से इस हवेली का मुकदमा चल रहा था।

मुड़ते हुए बाबूजी ने अम्मा से कहा था—

—देखो भाई, जो कुछ भी है पर तुम नई बहू को हवेली में ले जा के शाहगंज वाली भौजी के पैर जरूर छुआ लाना। मुकदमा अपनी जगह है पर वो हमसे बड़ी हैं और हमेशा रहेंगी···कल को कोई यह न कहे कि प्रवीन की बहू पैर छूने तक नहीं आई।···समझीं।

अम्मा को बाबूजी की यह बात बहुत पसन्द नहीं आई थी—उन्होंने तपाक से कहा—

—इतना ही उन्हें मानना है तो मुकदमा काहे को लड़ रहे हो! यह दिखावा हमसे नहीं होगा!

—चाची! सुन रही हो। बाबूजी ने परगना वाली दादी का सहारा लिया।

—वैसे बहू कह तो ठीक रही है। शाहगंज वाली तुम्हरा सब दाव के बैठी हैं, तो अब दिखावा का करना। हम अपनी बहू को काहे नीचा करें। उन्हें जरूरत हो तो वो हमारी बहू को देखने चली आएं। सब मुंह दिखाई करने आते हैं···अगर उनकी नाक सोलह हाथ की है तो हमारी बीस की।···हां!

अम्मा ने ठसक के बाबूजी को देखा। बाबूजी के पास कोई जवाब तो नहीं था, पर उन्हें बात जंची नहीं थी।

—जैसा तुम लोग ठीक समझो भाई! हम तो इतना ही कहते हैं कि नकटे को देख के कोई अपनी नाक नहीं कटवा लेता! सांप चाहे जित काटे, चंदन तो अपना धरम नहीं छोड़ता।

—तो पहले तो मुंह दिखाई होगी। बुलउआ होगा। अभी हमारे सब आएंगी, हां बुलउआ हम उनके हियां भी भिजवाय देंगी। इसमें ग नाहीं करेंगी। उन्हें आना हो तो आय जाएं। परगना वाली दादी ने च बात कह दी तो सबको जंच गई। उसी पर उन्होंने टीप जोड़ दी—

एक बात कहूं। हम तुम्हारी शाहगंज वाली से बड़ी हैं कि नाहीं ? बोलो ?

—हां···हैं ! बाबूजी ने कहा।

—तो उसे हमारे पैर छूने आना चाहिए था कि नाहीं ? बोलो··· तुम्हीं बोलो।

—हां···आना तो चाहिए था।

—तब···वो आई ? पैसे का गरूर है तो महारानी अपने घर बैठें। जब वो हमारे पैर छूने नाहीं आई तो हमारी बहू काहे को जाए ? उसके पास मोहरें हैं तो हमारी बहू लाख मोहर की है। समझे।

बाबूजी घर की औरतों की मर्जी समझ गए थे और जान गए थे कि उनके कहने या बताने से कोई ज्यादा फरक नहीं पड़ने वाला है। उन्होंने अपनी टोपी ठीक की और 'जो ठीक लगे, करना!' कह के बाहर चले गए। उन्हें कचहरी जाने की जल्दी थी, उससे पहले मुख्तार साहब से मिलना था। मुंशीजी से कहके मिसिल निकलवानी थी। यह कचहरी के कागज भी बड़े झंझट के काम होते हैं। लगे तो खाज की तरह लग जाते हैं।



अभी दोपहर ही थी कि बुलावे वाली आने लगीं। नाउन चाची अपनी मलमल की चदरिया डाले, सबके घरों में बुलावा दे आई थी।

इतनी उम्मीद नहीं थी, पर ऐसा कोई नहीं था, जो आया न हो। सब अपनी-अपनी बहुओं को ले कर आई थीं और घर का बड़ा आंगन एकदम भर गया था। जाजम छोटी पड़ गई थी तो अम्मा ने दरियां और बिछवा दी थीं। बाबूजी और अम्मा का रसूख ही ऐसा था—पूरी बस्ती का कोई घर ऐसा न था जिसके दुख-सुख में वह खड़े न हुए हों। जब-जब ब्याह-शादी हुई हो तो देने-लेने में कोताही की हो। ऐसे ही वखत तो आदमी का नाम और काम पता चलता है···कि एक बुलावे पर कितने लोग आते हैं।

ढोलक ठनक रही थी। गानेवालियां गीत गा रही थीं और आनेवालियां

सब बड़ी-छोटी शान्ता की मुंह दिखाई कर रही थीं—इस पूरी बस्ती में वह तो आज सबसे छोटी थी। सब उससे बड़ी थीं। अम्माजी ने कुन्ती और मंजू को बहू के पास बैठा दिया था—तुम लोग सम्भालती जाओ!

मुंह दिखाई में शान्ता का आंचल छोटे-छोटे गहनों और सिक्कों से भर गया था तो कुन्ती और मंजू सम्भालने लगी थीं। घूंघट उठाके जैसे कोई देखता था उसे, शान्ता आंखें नीचे झुका लेती थी···फिर अपने रूप का बखान सुनती थी तो और शरमा जाती थी, तभी उसके आंचल में वह मुंह देखने वाली कोई गहना या सिक्का रख देती थी और शान्ता उसके पैर छूती थी। तभी पास बैठी अम्माजी उससे उसका सम्बन्ध बता देती थीं—बहू! यह तुम्हारी बड़ी मौसी हैं। इन्हें पहचान ले। या बहू ये तुम्हारी बड़ी भाभी या बुआजी हैं···या···

सुनते-सुनते शान्ता तो घबरा गई थी—इतने रिश्तेदारों को कैसे याद रख पाएगी। पर जैसे सम्बन्ध और रिश्ते तो पूरी बस्ती से थे। मोहल्ले, बस्ती और आसपास या दूर वाले सभी आज उसके कुछ न कुछ हो गए थे।

तभी फुसफुसाहट का एक झोंका आया था—

—हवेली वाली आ रही हैं! हवेली वाली आ रही हैं···

दूर दरवाजे पर गहनों से लदी हवेली वाली तभी दिखाई दीं। उनके साथ उनकी नौकरानी भी थी, जो उसी ठसक से आ रही थी जैसे हवेली-वाली चली आ रही थीं।

सभी एकदम चौंक गए—किसी को उम्मीद नहीं थी कि हवेली वाली आएंगी।

ठमकती हुई हवेली वाली आगे आईं तो आनेवालियों की भीड़ ऐसे फट गई जैसे काई फट जाती है।

अम्मा ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया—

—जिज्जी, बड़े भाग्य हमारे कि तुम चल के बहू देखने आईं। कहते हुए अम्मा ने उनके पैर छुए। —ठीक है! ठीक है! खुश रहो···हवेली वाली ने मुंह बिराते हुए कहा—हम तो इसलिए चली आईं कि कल को तुम बदनामी न करो कि हमें पैसे का गरूर है, मुंह दिखाई करने नहीं आईं···

हवेली वाली की बात का रवैया किसी को अच्छा नहीं लग रहा था, पर उनका दबदबा कुछ ऐसा था कि सब चुप ही रहे।

हवेली वाली ने अपनी नौकरानी को आवाज दी—

—कमली ! जरा बहू का घूंघट उठा दे···मैं भी देख लूं।

उनकी नौकरानी कमली को शह मिल गई, उसने आगे बढ़ कर जैसे ही शान्ता के घूंघट को छुआ कि परगना वाली दादी एकदम बिफर उठीं—

—ऐ नौकरानी की बच्ची ! बहू के घूंघट को हाथ मत लगाना। शाहगंज वाली को मुंह देखना हो तो खुद देख लें। फिर उन्होंने हवेली वाली को आड़े हाथों लिया—

—ऐ शाहगंज वाली ! इतना गुमान अच्छा नहीं। सब का मान-सम्मान होता है। इतना ठसका है तो अपनी हवेली में बैठती···यहां आने का का काम था।

बुलावे में आई सब औरतों को यह बात ठीक लगी। यह तो कोई तरीका नहीं है। पैसे का रंग दिखाने आई हैं। हवेली वाली के मुंह पर कोई भाव न आया, न गया। बेशर्मी से हंस कर वह बोली—

—चलो हमीं मुंह देख लेते हैं। कहते हुए उन्होंने बड़ी हिकारत से शान्ता का घूंघट पलट दिया, फिर उसे मुंह बिराके देखती हुई बोलीं—

—अय हय ! सुना था बड़ी हूर-परी ले के आई हो। तुम्हारी बहू से तो हमारी कमली ज्यादा सुन्दर है।

नौकरानी कमली ने सबकी तरफ शान से देखा।

—कमली !

— जी मालकिन।

—दे दे इसे मुंह दिखाई की माला !

कमली ने अपनी टेंट में रखी सोने की माला निकाल के बहू के आंचल में डाल दी।

अम्माजी को तो जैसे बिच्छू ने काट लिया हो। उन्होंने फौरन शान्ता के आंचल से माला उठा कर हवेली वाली के सामने फेंक दी—

—जिज्जी ! तुम हमारे घर आई हो, इसीलिए हमारे मुंह पर ताला लगा है, वर्ना तो अभी···अम्मा की आंखें अंगारे की तरह जल रही थीं।

—नहीं तो अभी का ? हवेलीवाली ने अपना ठसका नहीं छोड़ा—

—जिसलिए बुलवा भेजा था, सो पूरा कर दिया। मन में तो यही था कि हम आएंगी तो कुछ भरपूर दे-दिवा के जाएंगी। माला रख लो···। कहकर उन्होंने पैर से ही नीचे पड़ी माला को अम्मा के सामने खिसका दिया और पलट कर चल दीं—

—चल कमली !

अम्मा ने माला ऐसे उठाई जैसे मरे सांप को उठा रही हों। उठा कर माला उन्होंने हवेली वालों के कान में लटका दी—उन्हें कोई और जगह उस गुस्से में दिखाई ही नहीं पड़ी।

तमाम औरतों को हंसी आ गई।

शान्ता की आंखें डबडबाई हुई थीं।

हवेली वालों के आने से सब रंग में भंग हो गया था।

वे जब बाहर वापस गईं तो बड़ी दूर तक उनकी झांझरों और करधनी की लड़ों की आवाज़ आती रही।

—कैसी औरत है।

सबके ओठों पर जैसे नीम का रस पड़ गया हो।

ढोलक फिर बजी। गीत भी हुए पर रंगत नहीं आई। बुलावे वाली भी जैसे लकीर पीट कर अपने-अपने घ र चली गईं।



शाम को बाबूजी खुश लौटे। खखार कर भीतर आते हुए उन्होंने एलान किया—

—सुनो भाई ! इस अदालत से तो आज हमने मुकदमा जीत लिया। सब कुछ शुभ ही शुभ हो रहा है। बहू के पैर घर में पड़ते ही सब कुछ अच्छा हुआ है। अब देखते हैं हवेलीवाली भौजी आगे क्या करती हैं !

तभी हवेली की पहाड़ जैसी दीवार में बड़ी खिड़की खुली थी और उसमें हवेलीवाली दिखाई पड़ी थीं। वे चीख रही थीं—

—छोटी अदालत में मुकदमा जीते हो···अरे मैं तो तुम्हें बड़ी अदा
लत तक पड़ाऊंगी। बड़ी अदालत से न हुआ तो रानी विक्टोरिया तक
जाऊंगी। हां! तुमने समझा क्या है···हमें कम मत समझना ··विलायत
तक दौड़ा-दौड़ा के मारूंगी···हां!

—हमारा हक मार के तुम चैन से नहीं बैठ पाओगी जिज्जी···ईश्वर
तुम्हें बदला देगा। अम्मा ने जवाब दिया था।

—तुम चुप रहो,वह तुम्हारी बड़ी हैं। बाबूजी ने अम्मा को रोका था

—बड़ी होंगी तो अपने घर की होंगी···हमारी बड़ी आज से यह
नहीं हैं। अम्मा कहती हुई एक तरफ हट गई थीं।

तभी हवेली वाली की कड़कड़ाती आवाज आई थी—

—अरे कीड़े पड़ेंगे तुम लोगों के···देख लेंगे हम। तुम लोगों को दर-
दर का भिखारी न बना दिया तो हमारे मुंह पर थूक देना।

कहते हुए हवेली वाली ने आंगन में थूका था और खटाक् से खिड़की
बन्द कर ली थी।

भीतर कोठरी के कोने में शान्ता यह सब देखती अवाक् रह गई थी।

21

शान्ता ने पहली ही सुबह एक पूरी दुनिया महसूस की। जिसमें कहीं
पूड़ियां और मैथी-आलू का सोंधापन था, चाचियों के गुच्छे की खनखना
थी, मुंडेर पर आकर बैठती चिड़ियों की चहक थी, हवेली में शोर मचाता
पाकड़ का पेड़ था, कुएं का मजेदार पानी था जो दोपहर तक ठंडा हो
जाता था। बर्तनों में वहीं जमा हुआ पीला-पीला घी, खिड़की की चौखटों
पर लटके हुए झोले, मोड़ पर रखा मिट्टी का घड़ा, खिड़की की छत में
लटकता हुआ छींका, दाग छुड़ाने के लिए कोने में बनी सोंधनी और पास
रखी चक्की। कोने में रखा मूसल। बरौनियों को पोंछने के लिए पोता
मिट्टी के चिकने टूटे चौन्धियों की किनारी की खनखनी, दो करोटों के बीच
दरवाजों की जरा-जरा चरमराहट, बाबूजी और अम्मा का वहीं प्यार,

सूखे कपड़ों की वही सलवटें, वैसे ही टूटे हुए धागे या सीप के बटन, टीन पर कूदने वाले बन्दर। जो सूखते कपड़ों को उठाकर ले जाते थे और रोटी फेंकने पर कपड़े छोड़के रोटी खाने लगते थे।

घर के आंगन में तुलसी का पौधा…लिपना रखा घिरुआ। वही बीमारियां, वही चोरियों की खबरें और शाम को लौटती रम्भाती गायें। गोबर के कण्डे…घरों पर आने वाले बिसाती और मनिहार, छींट और केलासन की गठरिया उठाए, हाथ में लोहे का गज थामे, गली-गली आवाज़ लगाते कपड़े वाले। हथकरघे की चादरें, दोहरें और अंगोछे, कैंथा, कमरख, इमली और बेर वाले गुड़ की पट्टी, भरारे और तिल की गट्टियों वाले…चाट वाले…घर-घर आकर अलख जगाने वाले…साधु, फकीर, खंजड़ी वाले सूरदास, बीन बजाते सांप वाले…उर्स और भण्डारे के लिए चन्दा मांगने वाले…सती की गाथाएं गा-गा के सुनाने वाले और हारमोनियम पर रख के गानों की किताबें बेचने वाले—वही ईद और मोहर्रम पर ढोल, नगाड़े और नपीरी बजाने वाले और दशहरा-दीवाली-होली पर ढोलक, डफ और बांसुरी वाले…।

खलती थी तो बस—हवेली की ऊंची दीवार और हवेली वाली…जिनका ठसका और ताकत धूप, हवा-पानी से नहीं आता था, कहीं और से आता था।

धीरे-धीरे घर से सब मेहमान विदा हो गए। बड़े गहरे रिश्ते जुड़ गए…ननद-भौजाइयों के, जेठानी-देवरानी के, चचिया सास और बहुओं के, दुख-सुख, आंसू-आहों, मुस्कराहटों और इशारों के, तुनकने, गुस्साने और चाहने के…

सब के एक-एक करके चले जाने से चौथे ही दिन घर में बहुत सन्नाटा-सा हो गया था। प्रवीन पाठशाला में पढ़ाने चले जाते थे…बाबूजी बाहर चबूतरे पर शतरंज और चौपड़ खेलते रहते थे। मंजू लड़कियों के स्कूल में पढ़ने चली जाती थी, अम्माजी फूल-गोभी, सरसों का साग और शलगम सुखाने के चक्कर में दिन-भर धूप के पीछे छत-छत भागती रहती थीं…

ऊपर छत से ही अम्मा ने गली के मोड़ पर तांगा आता देखा था तो

समझ गई थी—बहू की विदा कराने आ गए।

तांगे में बहुत-सा सामान आया था।

विदा वाले वहीं बाबूजी के पास चबूतरे पर अटक गए थे। अपनी बाज़ी खत्म करके बाबूजी खंखारते हुए भीतर आए थे और उन्होंने खबर दी थी—

—बहू की विदा कराने आए हैं।

—कौन-कौन आया है?

—बहू के बाबूजी की तबीयत ठीक नहीं है ··

—खैर, जो भी आएं, पर नेग की पहरावनें पांच ही जाएंगी। तुम जा के सत्तोजी की दुकान से ले आओ···पांच-पांच कपड़े होंगे सब के लिए···।

—मालूम है···सब पता है।

—क्या पता है···बताओ!

बाबूजी ने बहुत कोशिश की, पर पांच कपड़े नहीं गिनवा पाए तो अम्माजी ने बताया

—धोती, कुरता, बंजी, अंगोछा और टोपी—हुए न पांच! पांच-पांच के पांच जोड़े चाहिएं।

बाबूजी भागते चले गए।



विदा की पूरी तैयारी हो गई थी। ज़रूरत तो नहीं थी, पर खाना साथ न जाए तो सगुन नहीं होता। सीताराम हलवाई के यहां से मिठाई, नमकीन, मेम के बीज, दालमोठ और मठरियां आ गई थीं।···

तांगा गली के नुक्कड़ पर खड़ा था। गली की औरतें भी जमा हो गई थीं। नाऊन चाची पानी का गिलास लिए खड़ी थीं। मदू के हाथ में अरग देने के लिए लोटा था···भाभी जाएगी तो आगे-आगे रास्ता भी पवित्र करना होगा।

तभी बाबूजी ने अम्माजी को इशारा किया। अम्माजी अपना पल्ला सम्भालती बरोटे से बाहर आ गई और मायके जाने से पहले शान्ता को प्रवीन से मिल लेने का एक पल मिल गया। गहनों से लदी, महावर लगाए, चुनरी पहने शान्ता प्रवीन से चिपक गई—

—जल्दी से बुला लेना···अब हमसे तुम्हारे बिना रहा नहीं जाएगा! उसकी आंखों में आंसू थे।

—तुम पाठशाला के पते पर चिट्ठी लिखना···कहते हुए प्रवीन ने दो-तीन लिफाफे उसके टीन वाले बक्से की जेब में कुण्डा खोल के रख दिए।

दोनों को समझ नहीं आ रहा था कि कैसे एक-दूसरे से विदा लें, तभी नाऊन चाची की आवाज़ आई थी—

—बहू! सूरज पच्छिम दिशा को जाने से पहले की साइत है बेटा···

और शान्ता ने झटपट अपने आंसू पोंछकर प्रवीन के पैर छू लिए थे, मंजू और अम्मा आकर उसे ले गई थीं। मंजू आगे-आगे अरग देती जा रही थी।

नाऊन चाची तांगे के पास पानी का भरा गिलास लिए खड़ी थी। सामान तांगे के पीछे और खाने की गठरियां घोड़े की घास हटा कर आगे रख दी गई थीं। शान्ता के मायके से आया नाऊ नेग में मिला नया जोड़ा पहने और टोपी लगाए खड़ा था।

तभी अम्माजी ने बाबूजी से तांगे के पास खड़े सूरज को देखकर पूछा था—यह बहू के मामा का लड़का है?

—नहीं···पड़ोसी है···

—ठीक है···पड़ोसी भी तो भाई समान होते हैं।

तब तक सहारा देके नाऊन चाची और मंजू ने शान्ता को तांगे में बिठा दिया था। तांगे में बैठते ही नाऊन चाची ने बहू को गिलास दिया था—एक घूंट पानी पीले बेटा···घर से निन्ने पेट नहीं जाते!

और अम्मा जी ने एक सिक्का शान्ता को थमा दिया था—

—गिलास में डाल दे बहू!

भाऊ और सूरज आगे बैठ गए थे।

तभी बाबूजी ने अलग-अलग खड़े प्रवीन को देखा था, और एकदम बोले थे—तू छोड़ने क्यों नहीं चला जाता…जा…मंजू भी चली जाएगी…इसे वापस सायकिल पर बैठा के लेते आना।

प्रवीन के तो पर लग गए थे। वैसे भी वह कोई-न-कोई बहाना करके स्टेशन तक जाने वाला था ही, इसीलिए उसने सायकिल पहले से ही गली की दीवार से टिका के रखी थी। मंजू भी उछलकर भाभी के पास तांगे में बैठ गई। प्रवीन सायकिल लेकर आगे चल दिया।

जैसे ही तांगा चला—हवेली वालों की सामने वाले छज्जे की खिड़की खुली और ताने का एक तीर आकर नीचे गिरा—

—देख लिया…अरे कोई भाई-बन्द विदा कराने नहीं आया…बहू का यार विदा कराने आया था।

इस तीर के घाव को अम्माजी सह नहीं पाईं थीं, हवेली वाले के पीछे खड़े उनके नौकर को देख कर ताना मारा—

—अरे जिज्जी अपने यारों की बात करो…इतने पट्ठे पाल रखे हैं तुमने!

कहा-सुनी तूल पकड़ती गई। गली से घर तक बातों और तानों के घमासान तीर चलते रहे। पुरानों पुराने गड़े मुर्दे उखाड़े गए…एक-एक के घर-घराने के चिथड़े उड़ाए गए…

उधर स्टेशन जाते-जाते प्रवीन और सूरज में अपनी बातें होती रहीं, ब्याह के समय प्रवीन ने सूरज को देखा तो था पर कोई खास बात नहीं हो पाई थी। अब प्रवीन को पता चला था कि सूरज वकालत पढ़ रहा था तो प्रवीन ने उससे कहा था—

—तो वहां क्यों पड़े हैं? यह शहर बड़ा है अदालतें भी बड़ी हैं! हमारे शहर में आ जाइए।

—सोचता तो हूं!

—इसमें सोचना क्या है!

असल में प्रवीन सूरज से इसलिए लगातार बात कर रहा था क्योंकि वह शान्ता से बात नहीं कर पा रहा था और सूरज को [illegible]

वह असल में शान्ता को अपने शहर के बारे में बता रहा था।

आख़िर गाड़ी में उन तीनों को चढ़ाकर प्रवीन और मंजू वापस चले आए थे। गाड़ी की खुली खिड़की से बहुत दूर तक शान्ता सायकिल पकड़े खड़े प्रवीन को देखती रही थी···मंजू के उड़ते बाल ताकती रही थी—तब तक, जब तक दोनों एक धब्बे में नहीं बदल गए थे। हवा से बिखरे अपने बालों को सम्भालते हुए जैसे ही प्रवीन और मंजू को बहुत दूर पीछे छोड़कर शान्ता अपनी बेंच पर सीधी हुई थी कि सूरज ने पूछा था—

—कैसी हो सन्तो!

शान्ता एकाएक आवाज़ और सूरज को भी जैसे नहीं पहचान पाई थी—उसकी समझ में नहीं आया था किस अजनबी ने उससे कुछ पूछा था। एक पल बाद वह सूरज, उसकी शक्ल और सवाल को पहचान-समझ पाई थी। उसकी खामोशी ने ही बता दिया था कि वह अच्छी है।

—घर में सब लोग कैसे हैं? सूरज ने आगे पूछा था।

—सब लोग बहुत अच्छे हैं!

—सब सुख है न···

—हां!

तभी एक बादल का उड़ता हुआ टुकड़ा दूर आकाश में से तैर गया था और भरी हुई आंख की तरह एक डबडबाई हुई झील तार के खम्भों के पीछे से दौड़ती हुई पास आ रही थी।

झील काफी लम्बी थी—बड़ी देर तक वह खिड़की के पास आ-आकर पीछे लौट जाती थी। झील के किनारे बैठे बगुले और सारस यादों की तरह पास आकर पीछे छूट रहे थे···सूरज की किरनें तिरछी होकर धरती से दूर होती जा रही थीं।

—लगता है गाड़ी रात होते पहुंचेगी। नाऊ ठाकुर ने टोपी उतार कर सर खुजाते हुए कहा था।

—हां देर लग गई। कुछ तो खज़ाना चढ़ाते फर्रुखाबाद पर ही देर लगा दी···फिर मोटा पर पानी लेने में देर लगी। इसी में रात कर दी···

सूरज ने बताया था।

—सरकारी खज़ाने के साथ वही गारद चलती है! है [illegible]

भइया? नाऊ ठाकुर ने पूछा।

—हां! सब जगह से पैसा बटोर-बटोर कर दिल्ली [illegible]

है। सूरज ने कहा था।

तभी जोर का एक धमाका हुआ था और गाड़ी [illegible]

थी कि भूकम्प आया हो…और तड़ातड़ गोलियां [illegible]

में बैठे मुसाफिरों के दिल दहल गए थे। चीख-पुकार [illegible]

बेंचों के नीचे दुबक गए थे।

किसी की समझ में कुछ नहीं आया था—कि [illegible]

चीखें, कुछ आवाज़ें, फिर गोलियों की [illegible]

पुकार…फिर एक ऊंची आवाज़ सुनाई पड़ी थी—

—वन्देमातरम्!

गोलियां। आवाज़ें…सन्नाटा…[illegible]

—वन्देमातरम्!

पलक झपकते सब कुछ हो [illegible]।

कुछ लोग रात के अन्धेरे में [illegible]

वालों ने किसी घायल को [illegible]

आई थी।

हवलदार अभी भी डर से कांप रहा था।

नीचे उतर कर सभी सोच-विचार में लगे थे। तब हवलदार ने कहा था—

—गाड़ी नहीं ले जानी चाहिए। अंग्रेज बहादुर का पारा चढ़ जाएगा। मौका-वारदात से गाड़ी क्यों चलाई गई!

—लेकिन यहां जंगल में पड़े रहे और लुटेरे लौट आए तो अब वे सबको लूट के रहेंगे! एक मुसाफिर ने कहा था।

—नहीं! ऐसा नहीं होगा···वो लुटेरे नहीं थे···वो इनकलाबी थे! वो हमें नहीं···सरकारे बर्तानिया का खजाना लूटने आए थे! हवलदार ने कहा था।

शान्ता ने उन क्रान्तिकारियों को जब जंगल के घने अंधेरे की तरफ भागता देखा था तो न जाने क्यों उसे लगा था—उस गिरोह में नवीन भी था।

[illegible]

दूसरे ही दिन प्रवीन मास्टर जी को अंग्रेज कलक्टर ने बुलाया था। बहुत-सी बातें की थीं। ऊंच-नीच समझाया था और आगाह किया था—

—मास्टरजी! तुम्हारा भाई को एक दिन हमारे को फांसी देना पड़ेगा! अबी तलक हम तुम्हारा खातिर चुप रहा···काहे को तुम अच्छा आदमी होता···लेकिन किसू दिन तुम्हारे को भी तकलीफ में पड़ना पड़ सकता! तभी हमारे को कुछ नहीं बोलने का···

—अब हम क्या करें सर! नवीन हमारे वश में नहीं है! प्रवीन ने कहा था।

—तो तुम उसू कू बोलो—सरेण्डर करने का···तुम्हारा खातिर हम उसू को उम्र भर सिर्फ कैद में डालने का! तुम्हारा खातिर···काहे को ···तुम पीसफुल टीचर होता···अबी तुम सबका सोचने का! बाद में हमारू पास नहीं आने का! तबी हम कुछ नहीं करने सकेगा। तुम उसू

को बोलो—सरेंडर करे…

—मैं कुछ नहीं कर सकता सर ! वह हमें मिलता ही नही।

—हम तुम्हारे को उस से मिलने का छुट्टी देंगा…मौका देंगा ! अइसा इन्तज़ाम करेंगा कि वो तुम्हारे कू मिलने आएंगा ! कलक्टर ने बहुत समझाकर प्रवीन से कहा था।

—अब मैं क्या बताऊं सर !

—कुछ तो बताने का ? अपना घरवालों से सला-मश्वरा करने का… तबी बताने का…।

—जी…तो मैं घर में बात कर लूं !

—अच्छा हैय ! अच्छा हैय ! कलक्टर ने कहा था—लेकिन हमारे को आज ही बताने का !

—जी !

कहकर प्रवीन कलक्टर की कोठी से निकला था तो उसके पैर कांप रहे थे। बाहर आया तो सड़क पर ही बाबूजी मिले थे।

—क्या कह रहा था कलक्टर ? बाबूजी ने जानना चाहा था।

—घर चलिए…बताता हूं ! प्रवीन ने कहा था। और दोनों लपकते हुए घर की तरफ चल दिए थे।

रात थी—बाबूजी और प्रवीन जब गली के मोड़ पर पहुंचे थे—तो जहां चुंगी की लालटेन जल रही थी, वहां उन्हें एक छाया खड़ी दिखाई दी थी।

उन दोनों के मुड़ते ही वह छाया सड़क की तरफ चली गई थी और बाबूजी और प्रवीन गली में घर की तरफ बढ़ गए थे !

२

रात को किसी ने किसीसे ज्यादा बात नहीं की। खामोशी छाई रही। अम्मा ने एकाध बार बात उठाई भी पर आगे नहीं चली। कुछ बातें इतनी अहम होती हैं कि उन पर बातें नहीं की जा सकतीं—वे सिर्फ

हवलदार अभी भी डर से कांप रहा था।

नीचे उतर कर सभी सोच-विचार में लगे थे। तब हवलदार ने कहा था—

—गाड़ी नहीं ले जानी चाहिए। अंग्रेज बहादुर का पारा चढ़ जाएगा। मौका-वारदात से गाड़ी क्यों चलाई गई!

—लेकिन यहां जंगल में पड़े रहे और लुटेरे लौट आए तो अब वे सबको लूट के रहेंगे! एक मुसाफिर ने कहा था।

—नहीं! ऐसा नहीं होगा···वो लुटेरे नहीं थे···वो इनकलाबी थे! वो हमें नहीं···सरकारे बर्तानिया का खज़ाना लूटने आए थे! हवलदार ने कहा था।

शान्ता ने उन क्रान्तिकारियों को जब जंगल के घने अंधेरे की तरफ भागता देखा था तो न जाने क्यों उसे लगा था—उस गिरोह में नवीन भी था।



दूसरे ही दिन प्रवीन मास्टर जी को अंग्रेज़ कलक्टर ने बुलाया था। बहुत-सी बातें की थीं। ऊंच-नीच समझाया था और आगाह किया था—

—मास्टरजी! तुम्हारा भाई को एक दिन हमारे को फांसी देना पड़ेगा! अबी तलक हम तुम्हारा खातिर चुप रहा···काहे को तुम अच्छा आदमी होता···लेकिन किसू दिन तुम्हारे को भी तकलीफ में पड़ना पड़ सकता! तभी हमारे को कुछ नहीं बोलने का···

—अब हम क्या करें सर! नवीन हमारे वश में नहीं है! प्रवीन ने कहा था।

—तो तुम उसू कू बोलो—सरेण्डर करने का···तुम्हारा खातिर हम उसू को उम्र भर सिर्फ कैद में डालने का! तुम्हारा खातिर···काहे को ···तुम पीसफुल टीचर होता···अबी तुम सबका सोचने का! बाद में हमारे पास नहीं आने का! तबी हम कुछ नहीं करने सकेंगा। तुम उसू

को बोलो—सरेण्डर करे···

—मैं कुछ नही कर सकता सर! वह हमें मिलता ही नही।

—हम तुम्हारे को उस से मिलने का छुट्टी देंगा···मौका देंगा! अइसा इन्तजाम करेंगा कि वो तुम्हारे कू मिलने आएंगा! कलक्टर ने बहुत समझाकर प्रवीन से कहा था।

—अब मैं क्या बताऊं सर!

—कुछ तो बताने का? अपना घरवालों से सला-मशवरा करने का··· तबी बताने का···।

—जी···तो मैं घर मे बात कर लूं!

—अच्छा हैय! अच्छा हैय! कलक्टर ने कहा था—लेकिन हमारे को आज ही बताने का!

—जी!

कहकर प्रवीन कलक्टर की कोठी से निकला था तो उसके पैर कांप रहे थे। बाहर आया तो सडक पर ही बाबूजी मिले थे।

—क्या कह रहा था कलक्टर? बाबूजी ने जानना चाहा था।

—घर चलिए···बताता हूं! प्रवीन ने कहा था। और दोनों लपकते हुए घर की तरफ चल दिए थे।

रात थी—बाबूजी और प्रवीन जब गली के मोड़ पर पहुचे थे—तो जहां चुंगी की लालटेन जल रही थी, वहां उन्हें एक छाया खडी दिखाई दी थी।

उन दोनों के मुडते ही वह छाया सड़क की तरफ चली गई थी और बाबूजी और प्रवीन गली मे घर की तरफ बढ गए थे!



रात को किसी ने किसीसे ज्यादा बात नही की। खामोशी छाई रही। अम्मा ने एकाध बार बात उठाई भी पर आगे नही चली। कुछ बातें इतनी अहम होती हैं कि उन पर बातें नही की जा सकती—वे सिर्फ

विश्वासों को जन्म देकर खामोश हो जाती हैं।

उस रात अम्माजी, बाबूजी और प्रवीन अपने विश्वासों को टटोलते रहे थे। मंजू अभी किसी खेत की मूली नहीं थी।

सुबह होते ही वह खामोश तनाव फिर साफ दिखाई देने लगा—जो रात में ज़्यादा नज़र नहीं आया था।

जैसे ही अम्मा ने गरम दूध के गिलास और मंजू ने हलवे की तश्तरियां रखीं वैसे ही बात फूट पड़ी। प्रवीन अपने को सम्भाल नहीं पाया था। दूध का घूंट लेते हुए आखिर उसने बात छेड़ ही दी—

—नवीन रास्ते पर आ जाता तो कितना अच्छा होता!

—हां···यह बात तो है! अम्मा ने टीप लगाई।

बाबूजी ने तश्तरी की किनारी से हलवे का घी पोंछते हुए भौंहें उठा कर दोनों को देखा। वे कुछ कहना चाहते थे, पर बुदबुदाकर चुप रह गए। प्रवीन को लगा कि मौका अच्छा है, शायद बाबूजी बात सुनते जाएंगे। अम्मा ने उसका साथ दे ही दिया था, फिर जैसे बहुत सोचकर उसने बाबूजी से कहा—

—बाबूजी! आप खुद ही सोचिए···इस खून-खराबे और डाकेजनी से क्या देश आज़ाद हो जाएगा?

—तो तुम्हारे चरखा कातने से भी देश आज़ाद नहीं हो पाएगा! बाबूजी ने तैश में कहा—टीपू सुलतान, नाना फड़नवीस, झांसी की रानी और बहादुरशाह ज़फर पागल नहीं थे!

दोनों में यहीं से बहस छिड़ गई। प्रवीन बोला—

—मैं कहता हूं···यह हिंसा का रास्ता गलत है···नवीन गलती कर रहा है।

बाबूजी एकदम चीख से पड़े—

—मैं कहता हूं···नवीन सही है! आज़ादी के लिए कोई रास्ता गलत नहीं होता।

—इतनी बड़ी बर्तानिया सरकार से लोहा लेना कोई मामूली काम नहीं है।

—तभी तो मैं कहता हूं—नवीन कोई मामूली काम नहीं कर रहा

है! वह बहुत बड़ा काम कर रहा है।

अम्मा जैसे भीतर-ही-भीतर सुलग रही थीं, प्रवीन की ओर देखती हुई धीरे से बोलीं—

—मैंने एक बात कहूं—

—बोलो! तुम भी बोलो···

—अगर नवीन रास्ते पर आ जाता ···तो···

—तो?

—तो हम इस टूटे-फूटे घर में न पड़े होते···यह हवेली हमें कब की मिल चुकी होती! अम्मा ने प्रवीन की ओर देखते हुए दबे-दबे यह बात कही थी।

बाबूजी भभक उठे थे—

—तुम्हें अपनी हवेली की पड़ी है···यह देश सबकी हवेली है···इसके लिए कौन सोचता है? बाबूजी ने गुस्से में कहा था। तब प्रवीन बोला था—हम यह नहीं कहते कि देश के लिए कोई न लड़े—पर लड़ाई के तरीके अलग हो सकते हैं! मैं भी तो लड़ता हूं···अगर इसी रास्ते चल के नवीन भी लड़े तो दोनों काम हो सकते हैं! सच पूछिए तो हवेली वाली चाची का कब्जा हवेली पर इसलिए है कि नवीन गलत रास्ते पर चल रहा है! नहीं तो···

—नहीं तो क्या? हमें अपनी दिक्कतें और गरीबी मंजूर है! हवेली तो एक अधिकार का सवाल है···हवेली मिल जाने से हम अमीर नहीं हो जाएंगे···। नवीन रास्ता बदल दे तो हमें हवेली शायद मिल जाए, पर आजादी नहीं मिलेगी।

—इतने सर खपाना बेकार है! अम्मा ने कहा और वे चौके की तरफ चली गईं।

तभी बाहर से मंजू दौड़ती आई, खुशी से उछलती—

—भाभी आ गईं! अम्मा भाभी आ गईं!

—क्या?

—हां! चलो, देख लो···इक्के में उतर रही है! कहती मंजू फिर बाहर भाग गई।

सभी अचरज में पड़ गए। इस तरह बहू कैसे लौट आई! प्रवीन भी सोचता रह गया। अम्मा के माथे पर बल पड़ गए—बिना सायत, बिना विदा कराए ऐसे तो बहू कभी पहली वार नहीं आती! यह कैसे हुआ? उनका दिल घबरा उठा। पर बाबूजी अपनी छड़ी उठाकर एकदम बाहर लपककर चले गए।

शान्ता सचमुच आई थी। शान्ता के पिताजी—बड़े बाबू साथ थे।

—आइए, बड़े बाबू! कोई खबर भी नहीं···सन्देसा भी नहीं··· एकाएक···

—हां···आना पड़ा···शान्ता के बाबूजी ने कहा।

—हुआ क्या?

—कुछ खास बात नहीं, चलिए बताता हूं! कहते हुए उन्होंने सामान उठाया तो नमस्ते करके प्रवीन ने सामान उनके हाथ से ले लिया और कनखी से शान्ता को देखा—

शान्ता को अम्मा और मंजू भीतर ले जा रही थीं। प्रवीन ने सोचा था—शान्ता की आंखों से उसे बात का शायद कुछ पता चल जाएगा। पर शान्ता की आंखों में ऐसा कुछ नहीं था—जो कुछ बता पाता।

हां···जब गली से वह घर आ रही थी, तब हवेली वालों की खिड़की फिर खुली थी। उन्होंने मुंह बिदका कर देखा था और बड़ी कड़वी फबती कसी थी—

—लगता है यार के साथ पटी नहीं! अरे अब तो इसी घर की रोटियां तोड़नी पड़ेंगी···ऐसे बहू आती है क्या?

अच्छा यह हुआ कि बड़े बाबू ने यह फबती नहीं सुनी थी—वे तब तक बाबूजी के साथ आकर बैठक में बैठ चुके थे।

बैठक में दो गिलास पानी पहुंचा दिया गया था। मंजू शान्ता के साथ भीतर थी। बैठक में सिर्फ चार लोग थे—बाबूजी, बड़े बाबू, प्रवीन और दरवाजे की ओर ओट में खड़ी अम्मा। आखिर समधी आए थे, सामने निकलना और बैठना तो नहीं हो सकता था।

—हां···अब आप बताइए! बाबूजी ने चिन्ता से पूछा था।

—जी···वो बात यह है कि···

···प्रवीन ने उन्हें गौर से देखा था।

—देखिए···मैं सरकारी नौकर हूं ! जो गाडी लूटी गई है, वह मेरी लाईन की गाड़ी है···मेरे ऊपर बडी लताड़ पड़ी है। सच पूछिए तो हमें ···शान्ता के बाबू कहते-कहते चुप हो गए···

—ओह ! यह बात है ! बाबूजी ने कहा—लेकिन आप तो बहू के साथ आए हैं—इसका कारण कुछ समझ में नहीं आया। गाड़ी तो कोई भी लूट सकता था—और यह कैसे कहा जा सकता है कि गाड़ी क्रान्तिकारियों ने ही लूटी है ! आप ही बताइए !

—वह तो ठीक है···पर राजा की बात कौन काट सकता है···हमें कलक्टर साब ने बुलाया था — उन्हें सब मालूम है कि शान्ता इस घराने में ब्याही है···सो···

—सो ! सो क्या ? वह इस घर में ब्याही है तो क्या वह हमारी बहू की गर्दन पर छुरी रख देंगे ! हैं !

—बहू के नहीं सबकी गर्दनों पर छुरी रखी जाएगी ! प्रवीन का हौसला बढ़ गया था।

—तो मुझे एक बन्दूक दे दो ! मैं जाके नवीन को गोली से उड़ा देता हूं···उसे मारकर मैं खुद भी मर जाऊंगा। बाबूजी दहाड़ पड़े थे—यह सब कहने का यही मतलब है न ! तुम सब लोग का ! बोलो ! बोलो !

बाबूजी चीखे थे तो दूसरी दीवार से लगी खड़ी शान्ता सिहर उठी थी।

प्रवीन भी सकते में आ गया था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहे। पर बाबूजी की आग की लपटें भभक चुकी थीं···वे चीखते जा रहे थे—

—मैंने सब समझ लिया है ! तुम सब लोग क्या चाहते हो···तुम्हारी सरकार क्या चाहती है। उस गोरे कोतवाल ने मुझे बुलाकर धमकाया था, कहा था—अपने बेटे को पकडवा दो या लिख के दो कि तुम लोग का उससे कोई लेना-देना नहीं है···न रहेगा ! ···मैं जानता हूं,···तुम लोग यही चाहते हो···लेकिन मैं अपने खून से सम्बन्ध कैसे तोड़ लूं ! अपनी आराम आरइश के लिए अपने बेटे के गले में फांसी का फन्दा कैसे डाल दूं

मैं···मैं उसका बाप हूं ! तुम··· तुम लोग उसके कोई नहीं हो ! बोलो —तुम लोगों में से कौन-कौन कहना चाहता है—नवीन से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। बोलो ! बताओ मुझे ! बोलो प्रवीन क्या कहते हो···?

—एक दिन तो मुझे कुछ-न-कुछ कहना ही पड़ेगा। प्रवीन ने हकलाते हुए कहा था।

—तो अभी बोलो ! पहले मुझे बताओ ! बोलो !

—मैं आतंकवादियों से कोई सम्बन्ध नहीं रख सकता। प्रवीन ने कहा।

बाबूजी के हाथ से जैसे तलवार छूट पड़ी। उन्हें यह उम्मीद नहीं थी···वे सोच भी नहीं सकते थे कि प्रवीन यह कह सकेगा ! उनके चेहरे पर कड़वाहट फैल गई थी और बड़ी हिकारत से उन्होंने कहा था—

—यही तुम्हारा अहिंसावाद है ! यही तुम्हारा गांधीवाद है !

—हां···है ! प्रवीन पत्थर की तरह बोला था, जैसे उसमें बहुत ताकत भर गई हो —आतंकवाद से देश का भला नहीं होगा।

—ठीक है ! बाबूजी ने जैसे सांस लेकर कहा हो, फिर वह आगे बोले थे—शान्ता के बाबूजी से तो पूछना ही क्या है ? इनके दामाद ने तो अपना फैसला बता दिया। अब तुम बोलो ? बाबूजी ने अम्मा से पूछा था।

अब तक अम्मा छोटा-सा घूंघट निकाले, पीठ किए, बैठक के तखत पर बैठ चुकी थीं।

—तुम्हें नवीन से सम्बन्ध रखना है या नहीं ? बाबूजी ने पूछा था।

अम्मा हिचकिचाई थीं। उन्होंने धोती का पल्लू ठीक किया था, कुछ बुदबुदाकर चुप रह गई थीं, तो बाबूजी ने फिर पूछा था—

—बता दो आज सब कुछ तय हो जाए···नवीन को अगर गोरों ने पकड़ लिया तो उसे फांसी या देश-निकाला मिलेगा ही, हम उसे आज ही उसे घर निकाला दिए देते हैं ! बोलो भाई ! तुम क्या कहती हो ?

—का कहूं ! है तो इसी पेट का जाया···

—तो आगे बोलो न···

—उसीने कौन-सा सम्बन्ध हमसे रखा है ? कभी पूछने आया— अम्मा कैसी हो ? बाबूजी कैसे हो ? भाई-बहन कैसे हैं ?

—समझ गया···समझ गया ! बाबूजी ने बड़े ठण्डेपन से सिर हिलाते हुए कहा—अब हमें सरकार को बता देना चाहिए कि नवीन से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं···कहते हुए उन्होंने गहरी सांस ली, फिर एकाएक न जाने क्या सोचकर उन्होंने पिछली दीवार से लगी शान्ता से पूछा—बहू ! तुम भी बता दो ? अब तुम इस घर की धुरी हो और नवीन तुम्हारा देवर होता है ! कभी वह हारा-थका, रात-बिरात, भूखा-प्यासा जान-बचाता तुम्हारे घर की देहरी पर आ गया तो तुम उसे अपना मानोगी या नहीं ? कहते हुए बाबूजी ने सबकी आंखें बचाकर अपनी आंखें पोंछ ली थीं।

तभी शान्ता की बहुत साफ और गहरी आवाज आई थी—

—कोई कुछ कहे···नवीन लालाजी हमेशा हमारे रहेंगे···इस घर के रहेंगे !

शान्ता के बाबू एकदम चौंके थे—यह बड़ी दादी की आवाज कहां से आई थी !

बैठक की कार्निस पर लगी पुरखों की पुरानी तस्वीरें भी जैसे एकबारगी जानदार हो गई थीं···उनकी पीली पड़ी पुतलियां रोशनी से चमक उठी थीं, झींगुर-काटी मूछें एकदम शान से खड़ी हो गई थीं।

—तू मेरी बहू नहीं···तू मेरी लक्ष्मीबाई है ! कहते हुए बाबूजी रो पड़े थे। पता नहीं वे लाचारी में रो पड़े थे या खुशी से उनके आंसू फूट पड़े थे ! अपने आंसू सुखा कर वे इतना ही और बोले थे—

—अब इस देश को कोई भी आजाद करे ! लेकिन अब यह देश गुलाम नहीं रह सकता !···

प्रवीन चुपचाप सिर झुकाए हुए उठ गया था : वह कुछ नहीं बोला था। शान्ता के बाबू की हालत बड़ी अजीब हो गई थी। उनसे न बैठा जा रहा था, न उठा जा रहा था। आखिर उन्होंने इतना ही कहा था—

—मुझे गलत मत समझिए ! असल में मेरा मतलब यह नहीं था··· लेकिन क्या करता, कलक्टर ने बुला के हमसे पूछताछ की थी। उन्हें मालूम था कि नवीन हमारे दामाद का छोटा भाई है···इसीलिए उन्होंने हमें धमकाया था और कहा था—अपनी लड़की ब्याही है तो ठीक है···

पर हुकुम है कि उसे उसके घर पहुंचा आओ और आगे उन लोगों से कोई वास्ता मत रखो !

—और आप हुकुम को सर-माथे लगाए, बिटिया का बक्सा-गठरी उठाए सीधे चले आए ! खैर छोड़ो भाई···हर आदमी अपना-अपना काम करेगा···आप नौकरी करो···आराम से रहो।

तभी दरवाज़े पर दस्तक हुई।

बाबूजी ने बाहर निकल कर देखा तो तहसील का हरकारा खड़ा था। साफा बांधे, चपरास लगाए।

—क्या बात है भाई ?

—आपको तहसीलदार साहब ने बुलाया है !

—कब ?

—अभी !

—चलो ! कहकर उन्होंने भीतर खबर दे दी—बुलावा आया है, तहसीलदार का, अभी आता हूं !

कह कर बाबूजी हरकारे के साथ-साथ चल दिए।



तहसीलदार साहब अपने तिकोनी मेहराब वाले कमरे में बैठे थे। हिन्दुस्तानी थे। सरकारी कालीन कुर्सियां बिछी थीं, पीछे महारानी विक्टोरिया की तस्वीर लगी थी।

लाल गोट वाला लम्बा पंखा छत के कुण्डों से लटका हुआ था। मेज़पोश पर स्याही गिरी हुई थी। बाबूजी भीतर घुसे तो देखा—मिर्ज़ा साहब भी मौजूद हैं। बाबूजी की जान में जान आई।

—आइए बाबू कामता परशाद साहेब···आइए ! तहसीलदार ने उन्हें बड़ी इज्ज़त से लिया। मिर्ज़ा साहब ने हाथ से बैठने का इशारा किया। बाबूजी बैठ गए, तो तहसीलदार ने बात शुरू की—

—आपको तो सब पता है···जो वारदात हुई है···गाड़ी और खज़ाना

हमारे इलाके में लूटा गया है···इस वजह से सख्ती बढ़ गई है ! सरकार···
सच पूछिए तो घबरा गई है···इसीलिए उल्टे-सीधे कदम उठा रही है।
शायद हुकुम तो यहां तक होने वाला है कि खजाने की जितनी रकम लुटी
है—उसे हरजाना बना कर हमारे इस इलाके के हरेक आदमी से वसूल
किया जाए···इसी सिलसिले में मैंने मिर्जा साहब को भी तलब किया है।
सेठ घमण्डीलाल को भी बुलाया है···गुरुसहाय साहू को भी बुलाया है,
ताकि बस्ती के सभी मोअज्जिज लोगों से सलाह-मशवरा कर लिया जाए
और सबकी राय कलक्टर साहब के पास पहुंचा दी जाए !

—राय मांगना तो बहाना है ! होगा वही जो अंग्रेज कलक्टर ने
पहले से तय कर लिया है ! इस स्वांग की जरूरत ही क्या है ? मिर्जा
साहब ने कहा।

—आप ठीक फरमा रहे हैं ! तहसीलदार साहब ने दबी जबान
से कहा—लेकिन जो कहा गया है, वह तो करना ही है···और एक बात
है बाबू कामता परशाद साहेब !

—जी !

—मैं मजबूर हूं !

—किस बात के लिए ?

—यह रुक्का पढ़ लीजिए ! कहते हुए तहसीलदार ने एक खाकी
कागज उनकी तरफ बढ़ा दिया।

—आपकी पेंशन बन्द कर दी गई है ! मिर्जा साहब ने बताया—
तहसीलदार साहब ने मुझे रुक्का दिखाया था। यह नया हुकुम है

—जी ! इसमें मैं कुछ नहीं कर सकता। तहसीलदार बोले—
मुझे अफसोस तो है, लेकिन क्या करूं···

—इसमें अफसोस की क्या बात है ! मैं दस्तखत किए देता हूं !
यह लीजिए· ·बाबूजी ने जी-निब वाला कलम उठाया।

—लेकिन यह हुकुम गलत है तहसीलदार साहब ! यह पेंशन बर्त्ता-
निया सरकार ने बाबू कामता परशाद को नहीं दी थी। यह तो इस राज की
ठाकुर गद्दी ने दी थी इन्हें, जिसे बन्द करने का कोई हक अंग्रेजों को नहीं है
जब अंग्रेजों ने यह गद्दी जीती थी, उस वक्त इस बात की लिखत-पढ़त हुई

थी कि गद्दी की पेंशनें किसी भी हाल में बन्द नहीं की जाएंगी—वे बद-स्तूर जारी रहेंगी ! मिर्जा साहब ने तल्खी से कहा ।

—यह तो आप ठीक कह रहे हैं, लेकिन अब यह मामला कानूनी लड़ाई का बनता है । बाबू कामता परशाद अगर लड़ जाएं, तो जीत सकते हैं । तहसीलदार साहब ने राय दी ।

—छोड़िए तहसीलदार साहब···यह तो बड़ी छोटी लड़ाई है··· बड़ी लड़ाइयां पड़ी हुई हैं, जिन्हें हम छोटे-छोटे लोग लड़ रहे हैं ! कहते हुए दस्तखत करके बाबूजी ने पर्चा उन्हें थमा दिया, उस पर लिख दिया —इत्तला मिली ।

तब तक लाला घमण्डीलाल वगैरह आ गए थे और मिर्जा साहब बाबूजी को लेकर चलते हुए कहते गए थे—

—हम लोगों की राय का नाटक बेकार है तहसीलदार साहब···कह दीजिएगा यही बात···अच्छा ! आदाब-अर्ज···

मिर्जा साहब बाबूजी के साथ अपनी हवेली में आ गए थे, बग्घी के घोड़े खरंजों के आंगन में खड़े पैर पटक रहे थे । मिर्जा साहब बाबूजी के साथ ऊपर छतरी वाली मंजिल में पहुंचे तो सांस रोके खड़े रह गए ।

सामने नवीन खड़ा था ! उसके और साथी भी थे—सात-आठ । एक जाजम बिछी थी—उसी पर सबके लेटने-बैठने का इन्तजाम था । सिर-हाने कुल्हड़ रखे थे, उन्हीं में वे पानी पी लेते या चाय वगैरह···बीड़ियों के टुकड़े और एकाध मटमैले कपड़े कागज में लिपटी-बंधी बासी रोटियां सकोरों में ठण्डी खाई और बची हुई तरकारियां । कुतरी हुई हरी मिर्च, टूटी-अध-टूटी चप्पलें । खादी की कमीजें-कुर्ते—खिड़कियों के पल्लों पर लटके हुए कपड़े—और कोने में लकड़ी के बक्से के सहारे रखी सात-आठ विनचेस्टर रायफलें, कारतूस और कोने में डायनामाइट डिटोनेटर । बड़े हथौड़े और छोटी-मोटी अन्य चीजें—

नवीन ने आगे बढ़ कर बाबूजी के पैर छूने के साथ-साथ मिर्जा साहब के पैर भी छुए तो मिर्जा साहब की आंखों में आंसू आ गए । भरी आंखों से

मिर्जा साहब बोले—

—बाबू कामता परशाद ! मैं अपने बच्चों को ठीक से खाना भी नहीं खिला पाता···ये भूखे-प्यासे पड़े रहते हैं···यह मन बहुत दुखता है···पर क्या करूं ? किसी नौकर को भी नहीं भेज सकता इनके पास···

—इसीलिए ताऊजी हमारा सारा काम खुद निपटाते हैं। एक-एक चीज खुद अपने हाथों से लाते हैं। नवीन ने बताया।

—तुम लोग कब से हो यहां ? बाबूजी ने पूछा।

—आते-जाते रहते हैं। नवीन ने बताया। फिर अपने सब साथियों को बाबूजी से मिलवाया, घर के सब लोगों के बारे में पूछा, और फिर बाबूजी को लेकर एक तरफ चला गया।

—पिछली बार पसलियों के पास जो घाव लगा था, वह अब कैसा है बेटा ? बाबूजी ने बड़े प्यार से उसके कन्धों, बाहों और हाथों को छूते हुए पूछा—दवा लगाई थी ?

—अरे बाबू···जंगल में शेर के गोली लगती है, घाव लगता है तो कोई डाक्टर दवा लगाने आता है क्या ? हमारे घाव अपने आप ठीक हो जाते हैं ! नवीन ने बेपरवाही से कहा था।

—यहां कब तक हो ?

—कुछ पता नहीं, आज रात भी निकल सकते हैं ! एक बात है बाबू ?

—बोलो बेटा ?

—प्रवीन भइया क्या सोचते हैं ? उन्हें बुलाया गया था। आप भी गए थे···रात को आप दोनों लौटे थे···हमें सब पता है··· उनका रुख क्या है ? नवीन ने पूछा था।

—बेटा ! घास का कोई रुख होता है क्या ? जैसी हवा बहती है, उसी तरफ झुकती है ! बाबू जी ने बात को सम्भाला था।

—वैसे हमें कोई डर नहीं है···प्रवीन भइया तो मुझसे पहले हमारी इसी पार्टी में रहे हैं, अब वह अहिंसावादी हो गए हैं, हमारे पुराने साथी तो अब भी उन्हें याद करते हैं, लेकिन यह समझ में नहीं आता कि यह अहिंसावादी बार-बार साम्राज्यवादियों से बातें करने क्यों पहुंच जाते हैं। बस यही हमें खलता है···हम अपने खून से जिस दीवार को लाल

करते हैं, उसे ये लोग चूना-मिट्टी से पोतकर फिर सफेद कर आते हैं! ···नवीन ने बाबूजी की तरफ देखा था।

बाबूजी के पास कोई तैयार जवाब नहीं था। वे चुप रह गए थे।

—घर आओगे?

—कैसे आ पाऊंगा···

—हां, मत ही आओ···अच्छा है!

—क्यों, कोई और बात है बाबू?

—नहीं···और क्या बात हो सकती है···खतरा बहुत है न···कहते हुए बाबूजी का मन घुमड़ के रह गया था···वे कैसे बताते कि घर में क्या-क्या बातें हुई हैं और वहां का माहौल कैसा है! अपने मन की घुमड़न को सम्भालते हुए उन्होंने इतना ही कहा था—

—बहू तुझे बहुत याद करती है···बार-बार पूछती है तेरे लिए।

—उन्हें मेरा प्रणाम कह दीजिएगा···

तभी नीचे से किसी नौकर की आवाज़ आई—हुजूर आप कहां हैं?

मिर्ज़ा साहब ने ज़ोर से जवाब दिया—अरे मियां! हम इधर छत पर ज़रा कबूतरों की छतरी देखने आए थे···अभी आते हैं!

मिर्ज़ा साहब ने बाबूजी को इशारा किया और वे दोनों पुराने जीने से नीचे उतर गए।



शहर में डुगडुगी पिट रही थी—

—हुकुम मलका विक्टोरिया का···! बा-इजाज़त शहर कलक्टर अंग्रेज बहादुर निबलेट साहब···जारीकरता तहसीलदार साहेब! फरमान जारी किया जाता है कि—

डुगडुगी वाले के चारों तरफ भीड़ जमा हो जाती थी। जिस-तिस चौराहे या तिराहे पर जाकर वह एलान करता था।

पूरे शहर में अजीब-सी खलबली मच गई थी, इस अंग्रेजी फरमान

से कि मुबलिग चालीस हज़ार रुपया चौदह आने, तीन पैसे और दो पाई नगद रकम का जो सरकारी खजाना रेलगाडी से लुटा है—उसे हरजाने की शक्ल में बस्ती के हर आदमी से वसूल करके पूरा किया जाएगा।

कांग्रेस-पार्टी के दफ्तर में फौरन मीटिंग बैठ गई, ज्यादा बहस का सवाल ही नहीं उठा। फौरन तय पाया गया कि यह फरमान मंज़ूर नहीं किया जाना चाहिए। सब एकमत थे—सिवा दो-एक लोगों के। जो सहमत नहीं थे, उनकी दलील थी—

—आतंकवादियों से छुटकारा पाने का यही एक रास्ता है···जब हर आदमी हरजाना भरेगा, तब वह आगे कभी उन आतंकवादियों को पनाह नहीं देगा। यह तो साफ है कि रेलगाड़ी लूटने से पहले आतंकवादियों का गिरोह हमारी बस्ती में आया है, यहां रुका है और यहीं से उसने कूच किया है। हम अहिंसावादी हैं···एक तरफ हमें अंग्रेज़ी सरकार का विरोध करना है, तो दूसरी तरफ इन आतंकवादियों का भी!

तभी एक कांग्रेसी ने तैश में आकर कहा था—

—क्रान्तिकारियों को आतंकवादी कहना गलत है···वे भी देश की उसी आज़ादी के लिए लड़ रहे हैं, जिसके लिए हमने भी प्रतिज्ञा ली है··· अन्तर सिद्धान्तों का है! लेकिन हमारा दुश्मन एक है—बर्तानिया सरकार! हम इस फरमान का विरोध करेंगे।

सभी सहमत थे। एकदम कोने में इकट्ठे डण्डों में तिरंगे लगा दिए गए और जुलूस बन गया।

कलक्टर निवलेट के दफ्तर के सामने रोज़ प्रदर्शन होने लगे। नारे लगाती टोलियां हर सड़क, हर गली से गुज़रने लगीं। ज़िला और प्रान्त स्तर के कांग्रेसी नेताओं ने आकर मोर्चा सम्भाला। एक जन-आन्दोलन शुरू हो गया। हरजाना नहीं दिया जाएगा।

कई दिन यह हलचल चलती रही। ज़िला अधिकारी हरजाना वसूल करने के लिए अपने कदम उठाते रहे, आन्दोलनकारी विरोध करते रहे—और आखिर एक दिन कोतवाल के आदेश पर लाठी-चार्ज हो गया—सात-आठ लोग घायल हो गए, जिन्हें अस्पताल भेज दिया गया और बाकी लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया···काफी हंगामे और

ख़ून-ख़राबे के बाद ज़िला अधिकारियों को हरजाना वसूल करने वाला फ़रमान वापस लेना पड़ा। पता यह चला कि राजधानी दिल्ली में कांग्रेस के बड़े नेताओं ने वायसराय साहब से मिलकर यह फ़रमान वापस करवा दिया था।

उस दिन प्रवीन बहुत ख़ुश वापस लौटा था अपने विद्यालय से और आते ही उसने घर में ख़बर दी थी—देखा, अहिंसा के रास्ते से कैसे मसलों को सुलझाया जा सकता है।

बाबूजी चुपचाप खड़े थे। वे कुछ नहीं बोले। धीरे-से मुस्करा दिए।

—इस धरती को आज़ाद करने का एक ही रास्ता है अहिंसा का रास्ता! प्रवीन ने नेता की तरह कहा था—यह देश…यह धरती… हमारी भारत माता इसी तरह आज़ाद हो सकती है! बाबूजी कुछ और मुस्करा दिए थे।

तभी अम्माजी ने चौके की तरफ़ देखा था—शान्ता ने सबकी आंख बचाकर चूल्हे की मिट्टी का टुकड़ा रोटी की तरह खाया था और अम्माजी यह देख के फूल की तरह खिल गई थीं। उन्होंने फ़ौरन आंगन में आ कहा था—तुम भारतमाता के बारे में सोचो! हमें अपना सोचना है… हमारी बहू मां बनने वाली है!

—सच! बाबूजी खिल उठे थे।

प्रवीन शरमा के एकदम आंगन से खिसक गया था।

३४

शान्ता के पैर भारी हैं, यह ख़ुशख़बरी बड़े बाबू के पास भी पहुंच ई। जैसे ही गाड़ी गई, बड़े बाबू ने झण्डियां लपेटीं और सीधे घर जा के न्होंने ख़बर दी।

—सुनती हो! सन्तो के बाल-बच्चा होने वाला है!

—अच्छा! भगवानजी की दया है! तब तो जैसे उसकी ससुराल

में गोद भरने का बुलउआ हो जाए, तुम आ के सन्तो को यहां ले आओ !

—क्यों ? उन्होंने कुछ सोचते हुए कहा था।

—पता नहीं, भूल गए ?

—क्या ?

पहला बच्चा हमेशा मायके में होता है ! हम नहीं गए थे ! सन्तो की अम्मा ने लजाते हुए कहा था।

बड़े बाबू के दिमाग पर दूसरा बोझ था। उन्हें लग रहा था कि सन्तो को घर पर लाना सरकार को पसन्द नहीं आएगा—आखिर इसी कारण तो वे उसे उसकी ससुराल पहुंचा आए थे, और अब उसे लाना पड़ेगा तो फिर वहीं बात उठेगी। उन्होंने मन का डर तो बाहर नहीं आने दिया, बस इतना ही बोले—

—यह जरूरी है क्या ?

—सन्तो को लाना !

—हां !

—हां···है !

—पता नहीं कैसी-कैसी रस्में बना रखी हैं तुम लोगों ने···काहे को जरूरी है कि पहला बच्चा मायके में ही हो ? सन्तो के बाबू ने उलझन से कहा।

सन्तो की अम्मा ने उन्हें गौर से देखा। वह सब भांप गई थी कि वे क्यों आज इस तरह बात कर रहे थे। फिर भी उन्होंने बात को सहज बनाते हुए कहा—

—यह रस्में बड़ी जरूरी होती हैं !

—क्या रखा है इनमें ?

—ये बेकार नहीं बनाई हैं बड़े-बूढ़ों ने। बहुत मतलब है इनका !

—क्या मतलब भरा है इसमें कि पहला बच्चा मायके में ही हो ?

—क्यों भूल गए ? सन्तो की मां की झुर्रियों में एक हलचलभरी चमक आ गई थी···वे झुर्रियां जैसे एक-एक प्यारभरे क्षणों की कहानी कहने लगी थीं···सन्तो की अम्मा ने उनके कुरते का कोना पकड़ते हुए

था—

—तुम छोड़ते थे मुझे, जब सन्तो होने वाली थी ? इसीलिए अलग दिया जाता है दोनों को…पहला बच्चा ईश्वर का वरदान होता …वह वरदान खण्डित न हो जाए, इसीलिए बहू को मायके भेज देने की म बना दी गई ! सन्तो की अम्मा ने बताया था।

—छोड़ो…अब सब समझदार हो गए हैं, क्या रखा है इन रस्मों !

सन्तो की अम्मा की त्योरियां चढ़ गई थीं—

—यह तुम नहीं, तुम्हारे मन का चोर बोल रहा है !

—चोर ! कैसा चोर ?

—तुम्हें अपने अंग्रेज़ बहादुर का डर लग रहा है…कि सन्तो को घर लाए तो तुम पर पहाड़ टूट पड़ेगा…बोलो। ठीक कह रही हूं न…खाओ बड़ी अम्मा की सौगन्ध !

सन्तो के बाबू एकदम सिहर उठे थे। बात पकड़ी गई थी और बीच में बड़ी अम्मा की सौगन्ध भी आ पड़ी थी। उनकी समझ में नहीं आता था कि बड़ी दादी अब भी कैसी और क्यों रह-रह के जी उठती थीं। उस रोज़ जब बाबू कामता परशाद ने सन्तो से नवीन के बारे में पूछा था तो सन्तो में वे जाग पड़ी थीं और आज सौगन्ध के रूप में सामने खड़ी थीं ! यह बड़ी अम्मा कैसी हवा और धूप बन गई हैं !

सन्तो की अम्मा ने फिर टोका था—

—खाओ न बड़ी अम्मा की सौगन्ध।

वह तिलमिला गए थे—

—इसमें सौगन्ध क्या खाना ?

—सुनो !

—हां !

—तुम करो अपने अंग्रेज़ बहादुर की गुलामी…मैं उनकी नौक नहीं हूं ! समझे ! अब तुम्हारा अंग्रेज़ बहादुर हमारे रीति-रिवाज़ों में भ आड़े आने लगे…

—यह किसने कहा ?

—यह तुम्हारे मन के चोर ने कहा ! लेकिन तुम कान खोल के सुन लो—सन्तो घर आएगी···तुम्हारे अंग्रेज बहादुर हमारे रहने-सहने, सोचने-जीने में टांग अड़ाएंगे तो तुम अपनी जानो, हमें जो करना है, वह हम करेंगे···तुम सन्तो को यहां लाने में डरते हो तो मैं उसे ले के गांव वाले घर चली जाऊंगी···पर उसके पहले बच्चे का नार हमारे घर की धरती में गड़ेगा···तुम जा के सन्तो को नहीं लाओगे, तो हम आप जाएंगी···बस···उसकी गोद भर जाने दो···



शान्ता की ससुराल में बड़ा भारी बुलउआ था। गोदभराई का। शान्ता गुड़िया की तरह सजाई गई थी। सात सुहागिनों ने दीपक जला के शान्ता की पूजा की थी—आरती उतारी थी। आखिर वह मां बनने वाली थी। औरत होने की सबसे बड़ी पदवी पाने वाली थी···मां ! अम्मा ! घर की अम्मा ! धरती मां ! सुहागिनों ने उसकी पूजा करके चारों दिशाओं में धान छिरके थे—

—सब दिशाएं···वायु-वरुण, अग्नि और सब देवता जान लें—शान्ता को मां बनने का वरदान मिला है···सब इस मां की रक्षा करें ! वायु-वरुण और अग्नि···धरती को स्थिर रखें···अपनी कोख में वरदान को पालती इस धरती मां को कोई धक्का न लगे···इसकी रक्षा अब तुम्हारा कर्त्तव्य है !

फिर सुहागिनों ने पंछियों के लिए सब दिशाओं में दाने छिरकते हुए प्रार्थना की थी—

—सब पंछियो सुनो ! सृष्टि के सब पंछियो सुनो···अपने रंगीन पंखों पर उड़कर सब दिशाओं में जाओ और मधुर स्वरों से सबको सन्देशा दे आओ—शान्ता मां बनने वाली है !

फिर शान्ता का आंचल नारियल और अन्न से भर दिया गया था···शान्ता उठी तो उठते ही उसे अन्न और नारियल से भरा आंचल ऐसा

लगा था जैसे उसकी गोद में सचमुच एक बच्चा समा गया हो'''अन्न से फूटती गरमी और महक वैसी ही थी जैसे बच्चे के शरीर से फूटती है''' और नारियल के भीतर भरा पानी वैसे ही थरथरा रहा था जैसे उसकी कोख में रह-रह के कुछ थरथराता था।

रात को अपने कमरे में शान्ता लेटी थी तो प्रवीन ने उसके पेट पर हाथ रखा था'''शान्ता ने उसका हाथ हलके से पकड़ के पेट पर दबाया था—हुआ !'''

—हां, लगता तो है'''

—कान लगाके सुनो'''शान्ता ने अपना पेट उघार लिया था।

—हां'''आहट आती है !

कहते हुए प्रवीन ने उसे बांहों में भर लिया था और बड़ी देर तक दोनों एक-दूसरे की आंखों में एक तीसरी परछाईं देखते रहे थे।

शान्ता सोई तो बड़ा मधुर सपना आया था।

सारी सृष्टि में नई कोपलें फूट रही थीं—चारों तरफ से बच्चों की खनखनाती भोली हंसी की किलकारियां आ रही थीं। तमाम बच्चे उसे गुलगुला रहे थे, इधर-उधर दौड़ या घुटनों चल रहे थे या अपने गुदारे हाथों से दूध पीने के लिए उसका आंचल खींच रहे थे। तभी उसकी छातियों से जैसे दूध के झरने फूटने लगे थे'''ऐसी सिहरन'''और ऐसा सुख तो उसने कभी पाया ही नहीं था'''

सुबह वह उठी तो नशा छाया हुआ था और उसे लगा था कि उसका जम्पर दूध से गीला हो गया था।



उधर शान्ता की अम्मा ने पल्लू से अपनी गीली आंखें पोंछकर कहा था—

—सुनो सन्तो के बाबू ! हम अपनी सन्तो को लेने जा रहे हैं, तुम गुलामी करो अपने अंग्रेज बहादुर की, हम किसी के गुलाम नहीं हैं ! कैसे हैं तुम्हारे मालिक जो अपने खून को अपने खून से अलग कर रहे हैं ! हम नहीं मानने वाले हैं कुछ भी···

—जाओगी कैसे ?

—तुम्हारी रेलगाड़ी से नहीं जाऊंगी ! हमने सूरज को भेज के इन्तजाम कर लिया है···तुम अपनी रेलगाड़ी देखो···हमें जो करना है वो हम करेंगे !

और शान्ता की अम्मा सूरज को साथ लेके शान्ता को लेने चली गई थी। बड़े बाबू अपना मन मसोस के रह गए थे। उन्हें लगा था कि घर में यह बहुत बड़ी और बुरी बात हो गई है, उनका मन भी रोता था···पर चाहते हुए भी सचमुच वह नहीं कर पाए थे, जो करना चाहिए था।

एक बार तो मन हुआ था—लात मारो ऐसी चाकरी को और सुख से जाके अपने गांव में रहो···पर गांव लौट के जाना और रहना अब मुमकिन दिखाई नहीं देता था। खेती करने लायक शरीर नहीं रह गया था और रेल के धुएं-धक्कड़ ने उनकी धमनियों में दूसरी तरह का खून भर दिया था। उनके शरीर को ठण्डे-गरम की दूसरी ही तासीर दे दी थी··· चीज़ों की पहचान बदल दी थी। अब तो बैलगाड़ी का हत्था पकड़ते तो वह हथेली की पकड़ में नहीं आता था···रेल के डिब्बे के लोहे के बेंट के हिसाब से हथेली की पकड़ बदल गई थी। पैरों के उठने का नाप डिब्बे की सीढ़ियों और दफ्तर की सीढ़ियों के नाप में बंध गया था, अब तो इक्के या तांगे के पायदान के नाप से पैर भी ऊपर नहीं उठता था। अब तो आंख में भूस का तिनका गिरता था तब निकालने में उलझन होती थी, पर इंजन का कोयला गिर जाए तो फौरन निकल जाता था। हाथों में हरी-लाल झण्डियां पकड़ते-पकड़ते और डिब्बों के बेंट थामते-थामते हथेलियां इतनी बदल गई थीं कि सन्तो की अम्मा की बांहों पर पकड़ के नीले निशान पड़ने लगे थे : उसने एक रात कहा भी था—

—अब तो तुम हमारे साथ ऐसे लेटते-बैठते हो जैसे गाड़ी चला रहे हो !

उस रात तो वह हंस दिया था, पर आज सचमुच उसे लग रहा था कि उसे क्या हो गया है ? उसके शरीर की हरे धान की पौधों वाली लचक कहां चली गई ? शरीर में जो मिट्टी की गरमी समाई रहती थी, वह लोहे की ठण्डक में कैसे बदल गई···मन में जो चन्दन की महक भरी रहती थी, उसकी जगह कोयले की महक कैसे समा गई···किसी के तन से एक बूंद खून निकलता था तो मन में कैसी दया और करुणा उभरती थी···पर अब रेल से कटे आदमी को देख कर दया के साथ-साथ घिन भी आती है···जो पहले कभी नहीं आई। अब पटरी पर फैला खून देखकर मन सहमता नहीं···कटे हुए हाथ-पैर जल्दी-जल्दी उठवा कर गाड़ी के वखत से रवाना कर देने की जल्दी पड़ी रहती है···इस गाड़ी और इस गाड़ी को चलाए रखने के हुकुम के सामने पूरी दुनिया नम्बर दो की दुनिया हो के रह गई है और अब अपना आदमी उतना आदमी नहीं लगता···कुछ और मामूली लगने लगा है और यह रेलगाड़ी बहुत बड़ी और जरूरी लगती है।

बड़े बाबू ने तय किया कि वह अगली गाड़ी से ही सन्तो के पास चले जाएंगे और उसे और उसकी अम्मा दोनों को खुद ही लेके आएंगे ··पर तभी जिम्मेदारी सामने आ गई···फिर यहां कौन देखेगा ? रेलगाड़ी कैसे चलेगी ?···खैर अब सन्तो को आ जाने दो, जो होगा देखा जाएगा।

३

सन्तो आई। गांव से कई दिन पहले दाई बुआ को बुला लिया गया था। वह घर में ही रह रही थीं···सन्तो की जच्चागीरी के लिए सब इन्तजाम हो गया था। कमरे के बाहर लगातार आग जलनी थी, उसके लिए लोहे का तसला तलाश के रख लिया गया था। गन्धक का धुआं लगातार तब तक रहेगा, जब तक बच्चे की छट्ठी नहीं हो जाएगी, इसके लिए गन्धक को कूट के पोटली में बांध लिया गया था।

सन्तो को चरुआ का पानी ही पिलाया जाएगा—उसके लिए एक बड़ा मटका तैयार था और जौ, गुड़, अजवाइन और सौंठ की पुट-

लियां उसमें रख दी गई थीं। हरीरे के लिए सारा सामान मंगा लिया गया था और बच्चे का नार काटने के लिए दाई-बुआ ने चक्कू पर सान धरवा ली थी। कोई कमी नहीं रह गई थी। सब तैयारियां पूरी थीं।

आखिर एक रात सन्तो ने बेटे को जन्म दिया था और दोनों घरों में शहनाइयां और ढोल बजे थे—उसकी ससुराल में भी और मायके में भी।

बड़े बाबू को जो धड़का था, वैसा कुछ भी नहीं हुआ था। इस बार पता नहीं क्यों, उन्हें किसी ने बुला कर कुछ नहीं कहा था और उन्होंने राहत की सांस ली थी।

लेकिन दो महीने बाद बड़े बाबू का सब, चैन-आराम और बेफिक्री उड़ गई थी, जब एक दिन छुपता-छुपाता नवीन अपने भतीजे को देखने आया था। तब बड़े बाबू की बोटी-बोटी कांप उठी थी।

हुआ यह था कि रातोंरात नवीन और उसके साथी बस्ती पार करके जाना चाहते थे, पर पीछा करती गारद ने उनका आगे भागना मुश्किल कर दिया था और उन क्रान्तिकारियों को मजबूरन एक पुराने मकान में शरण लेनी पड़ी थी—उन्हें खाने की भी जरूरत थी, कुछ दवाइयों की भी, क्योंकि अनवर की टांग गोली से घायल थी और गाड़ी या घोड़ों की भी, जिनसे वह रातोंरात निकल जाना चाहते थे।

इसी तलाश में जब वे चोरों की तरह भटक रहे थे तब उन्हें सूरज मिला था। सूरज को नवीन को पहचानने में बहुत देर नहीं लगी थी, क्योंकि अंग्रेज़ी सरकार ने क्रान्तिकारियों को पकड़वा के इनाम जीतने वाले जो पर्चे जगह-जगह चिपकवाए थे, उनमें सबसे ऊपर और बड़ी तस्वीर नवीन की ही थी।

नवीन ने बड़ी हुज्जत की थी, अपने को बार-बार छुपाया था, पर जब सूरज ने कहा था—

—घबराओ मत! मैं तुम्हारा अपना हूं···तुम जो काम क्रान्तिकारी बनके करते हो, वही काम मैं वकील बनके कर रहा हूं···कौन कहां है, यह जरूरी बात नहीं है—जरूरी बात यह है कि जो जहां पर है, वहां क्या

कर रहा है ? नहीं ? मैं गलत कह रहा हूं ? बोलो !

तब नवीन को लगा था कि सब ठीक हैं और सूरज ने उन क्रान्तिकारियों के लिए इन्तजाम करते-करते ही यह खबर नवीन को दी थी कि वह चाचा बन गया है।

—सच ! नवीन की आंखों में चमक छलकी थी—भाभी कहां हैं ?

—यहीं !

—तब तो मैं भाभी से मिलने और मुन्ना को देखने जरूर जाऊंगा !

—यह नादानी मत करो नवीन ! अनवर ने समझाया था।

—नहीं···कुछ नहीं होगा ! मैं एक पल के लिए भाभी और मुन्ना से मिलके चला आऊंगा। तुम लोग तैयार रहो···मैं सूरज भइया के साथ जाके अभी लौटता हूं।

उस समय सूरज डूब रहा था। अधूरी शाम थी।

सूरज ने नवीन को पिछवाड़े की खिड़की दिखा दी थी और खुद पहरेदारी पर खड़ा हो गया था।

नवीन ने खिड़की से देखा—

मुन्ना को चूमकर अभी शान्ता ने लिटाया था—मुन्ना के मोटा-मोटा काजल लगा था। माथे पर काला डिठौना। हाथों में काला डोरा और कमर में काले डोरे की करधनी। शान्ता ने उसे चूमकर लिटाया तो मुन्ना ने हाथ-पैर फैलाए थे—अपनी मां को पकड़ने के लिए और किलकारी भरी थी।

—शैतान ! शान्ता ने प्यार से उसके चपत लगा कर उसे लिटा दिया और गीला तिकोनियां उठाकर सुखाने चली गई थी।

नवीन ठगा-सा खड़ा रह गया था।

शान्ता के जाते ही नवीन खिड़की से कूदकर कमरे में पहुंच गया था और उसने मुन्ना को बांहों में उठा कर देखा था। मुन्ना ने टकटकी बांध नवीन को देखा था और मासूम मोटी-मोटी पलकें झपकाने लगा था।

—नहीं पहचानता मुझे ? नवीन ने मुन्ना को चूमते हुए कहा था—ऐ पगले ! पहचान ले मुझे ! मैं तेरा चाचा हूं ! चाचा !

मुन्ना ने फिर भोली आंख से देखा था, हलके-से मुसकराया था,

उसके ओठों पर गबुआरा झाग आ गया था—नवीन ने उसका मुंह खोल कर पूरी सास से कच्चे दूध की गन्ध सूंघी थी—भाभी का महकता कच्चा दूध···फिर मुन्ना की गुदारी भीगी-भीगी हथेलियों में अपनी अंगुली फंसा दी थी, मुन्ना ने अपनी मुलायम अंगुलियों से पकड़ लिया था···

—सुन मुन्ना ! देख ले मुझे···भूल मत जाना अपने चाचा को ! ··· मैं तेरे लिए ही लड रहा हूं मेरे बेटे···तेरी आजादी के लिए ! समझा ! ·· समझ गया ? कहते हुए नवीन ने मुन्ना को जगह-जगह प्यार किया तो उसके पूरे शरीर की महक मे लगभग मदहोश हो गया था और मुन्ना को गुदगुदी होने लगी थी तो वह खिनुं-खिनुं करके धीरे-धीरे हंसने लगा···।

तभी शान्ता के आने की आहट हुई और नवीन एकदम मुन्ना को लेकर किवाड़े की आड़ मे छुप गया।

शान्ता सूखी तिकुनिया सम्भालती आई···पुचकार कर उसने मुन्ना को आवाज लगाई···तभी देखा—मुन्ना नही था। शान्ता एकदम घबरा गई ··

—मुन्ना !

बिजली की कौंध की तरह उसने सोचा—मुन्ना तो अभी पलट भी नही सकता···खटिया से लुढक तो नही गया ! उसने घबराहट मे नीचे देखा, इधर-उधर हाथ मारे, उसे पुकारा और एकदम घबरा कर चिल्ला उठी— .

—मुन्ना ! ···अम्मा ! मेरा मुन्ना···मुन्ना ··

—यह रहा ! नवीन एकदम किवाडे के पीछे से बाहर आ गया···

—हाय ! मैं तो एकदम डर गई थी ! शान्ता ने अपनी छाती पर हाथ रखके गहरी सास ली थी और सांसें ठीक होते ही हंसते हुए बोली थी—तो बडे मुन्ना भी यहीं है !

—हां भाभी ! मैं मुन्ना से मिलने आया था। इसे बता दू कि इसका चाचा हूं !

—बता दिया !

—हा।

—अच्छा किया ! अब यह तुम्हें कभी नही भूलेगा लालाजी !

—क्या पता…

—सच्ची कहती हूं! बड़ी दादी कहती थीं…जब तक बच्चों के दूध के दांत नहीं निकलते, तब तक इनकी आंखें भगवानजी की आंखें होती हैं—जिसे देख लेती हैं, कभी नहीं भूलतीं! मनुआरी आंखों में छवि समा जाती है।

—भाभी! एक बात कहूं?

—कहो?

—लगता है, जैसे मुन्ना ने आज मुझे देखा है, इसी तरह मैंने तुम्हें कभी जरूर देखा होगा…मेरी आंखों में तुम्हारी छवि थी भाभी!

—ओह लालाजी! कहते हुए उसकी भाभी ने उसे छाती से लगा लिया था, जैसे बड़ा बेटा उसे मिल गया हो…मुन्ना बीच में दबा तो रो पड़ा, तब कहीं शान्ता को मुन्ना का ध्यान भी आया कि वह भी था। उसे बांहों में लेकर पुचकारते हुए शान्ता ने पूछा था—

—तुम्हें मुन्ना की खबर कैसे मिली?

—भटकता-भागता यहां आ गया था। सूरज भइया ने पहचान लिया…फिर सम्बन्ध बताया और उन्होंने ही मुन्ना का बताया। सभी साथी साथ थे, पर मैं मन रोक नहीं पाया…सोचा, मुन्ना को देखे बगैर नहीं जाऊंगा!

—कितना अच्छा किया तुमने! शान्ता ने कहा—पर एक बात बताओगे लालाजी?

—बोलो भाभी?

—मैंने एक पल के लिए मुन्ना को नहीं देखा था तो क्या हाल हुआ था मेरा!

—हां—

—तो सोचो!

—क्या?

—अम्माजी ने तुम्हें बरसों से नहीं देखा, क्या हाल होता होगा उनका? क्या बीतती होगी उन पर! कभी सोचा है तुमने?

नवीन एकटक आंखों से भाभी को देखता खामोश खड़ा रह

गया···उसके ओंठ कांपे, आंखों के घोसले से यादों के कुछ परिन्दे घायल-से पंख फड़फड़ाते उड़े और भाभी के पैरों पर गिर पड़े···नवीन की आंखें भाभी के पैरों पर टिकी थी · शान्ता के पैरों में कई दिन का महावर लगा था और अंगुली में बिछुआ पड़ा था—छोटी-सी मछली वाला—वह मछली नवीन की आंखों में उमड़ते समुद्र के पानी में समा गई थी।

—बोलो लालाजी, मुझे जवाब दो!

गहरी सांस लेकर नवीन ने कहा था—

—भाभी! अम्मा से भी बड़ी मेरी एक और मां है।

—मुझे पता है लाला जी।

—तो अब तुम बोलो?

—अब क्या बोलूं! यही लगता है···

—क्या?

—अपने देश में मां बनना कितना सकारथ है!

—छोड़ो भाभी···बन्धनों में मत बांधो···यह बातें यादों में उलझी रह जाती हैं! कभी खून बनके उबलती हैं, कभी आंसू बनके पिघलती हैं।···तब···बड़ी मुश्किल होती है!

—जानते हो अम्माजी क्या कहती हैं?

—क्या?

—घर के सामने वाला नीम का पेड़ रोता है···तो उसके तने पर चिपके आंसू देख कर वह बोली थी···नवीन को शायद हमारी याद आई होगी···तभी यह पेड़ रो पड़ा!

—पेड़ तो रो भी सकते हैं भाभी, हम नहीं! मां रो सकती है··· बेटा नहीं···रोना हमारा धर्म नहीं है। नवीन ने ओंठ कसते हुए कहा था —अच्छा भाभी, चलता हूं!

—कल आ सकोगे?

—कल?

—हां! अम्माजी, बाबूजी और तुम्हारे भइया मुन्ना को देखने आएंगे···तुम भी एक पल के लिए आ जाओ!

—नहीं भाभी मैं नहीं आ पाऊंगा?

—बात ही नहीं माननी है, तो यह भाभी का रिश्ता क्यों जोड़ा है ? जोड़ा है तो निभाना पड़ेगा लालाजी !

—क्या कहूं भाभी···नहीं आ पाऊंगा।

—तो कब आओगे ?

—क्या पता।

— नहीं, कुछ तो तय करके जाना पड़ेगा !

—कैसे करूं ?

—अच्छा, होली पर आ जाना···मेरी पहली होली होगी···

—देखूंगा, आ सका तो···

—नहीं···मुझे वचन दो लालाजी ! यही तो देवर-भाभी का त्यौहार होता है।

—भाभी···क्या पता, खून की होली खेलते-खेलते कहां निकल जाऊं!

—नहीं···जब तक मैं जिन्दा हूं, तुम्हें हर होली पर आना पड़ेगा ! मेरी बात नहीं रखोगे ?

तभी ताली बजी···

सूरज ताली बजा के इशारा कर रहा था। साथी चिन्तित हो रहे थे।

—मैं चलता हूं !

—वचन दो मुझे ! शान्ता ने उसका हाथ पकड़ लिया था।

—आऊंगा भाभी !

कहते हुए उसने भाभी के पैर छुए थे, मुन्ना को जल्दी से प्यार किया था और खिड़की से कूद कर बाहर चला गया था।

शान्ता मुन्ना को बांहों में लिए खिड़की से देखती रही थी—नवीन और सूरज की पीठें दूर होती जा रही थीं···उनके पैरों की आहट खोती जा रही थी···

२

खिड़की से चिपकी क्या खड़ी है बहू ? वह नहीं आएगा ! अम्मा

जी ने कहा। शान्ता एकदम चौंकी।

चारों तरफ होली का हंगामा था। घर में भी मंजू ने टेसू का रंग घोल रखा था। वह भाभी को पुकारती आई—

—आओ न भाभी ! होली खेलो !

—चल, आजा बहू !

—नहीं अम्माजी, मैं लालाजी का इन्तजार करूंगी, उन्होंने कहा था—आएंगे !

अम्माजी ने लाचारी से उसके विश्वास को देखा था, फिर दुख से कहा था—

—अरे, उसका क्या भरोसा ? वह कह के भी कभी आया है ;

शान्ता ने अपनी बड़ी-बड़ी आंखों में भरे हुए विश्वास को दरसाते हुए कहा—

—मुझसे कहा है, तो जरूर आएंगे···जब तक वह नहीं आएंगे···मैं होली नहीं खेलूंगी !

पांच होलियां निकल गईं··

शान्ता भी बात की पक्की थी। वह लगातार पांच होलियों पर नवीन का इंतजार करती रही नवीन नहीं आया तो शान्ता ने रंग को हाथ भी नहीं लगाया। होलिका जलती थी, तो त्योहार की पूजा कर लेती थी—बस !

छठी होली आई तो अम्माजी प्यार से बिगड़ पड़ीं—बहू ! पांच साल से तूने होली छोड़ रखी है··अब मेरे कहने से उसका आसरा छोड़ दे···अब मुन्ना है, मुन्नी है ··मंजू भी बड़ी हो गई है, कल के ब्याह के बाद अपने घर चली जाएगी, मन में कसक लिए—भाभी के साथ कभी होली ही नहीं खेल पाई ··आजा, तेरे बाबूजी होलिका के लिए बड़ी होली से अंगारे लेने गए हैं···जा धोती बदल···

—नहीं अम्माजी !

—अब तू बड़ी हो गई है बहू ! बचपना नहीं करते···दो-दो बच्चों की मां है···त्योहार तो बच्चों के लिए होते हैं ! सुना कर जो कहती हूं।

शान्ता पलटी—

आंगन में गांव से आए ताजे गन्ने पड़े थे। गेहूं और जौ के गट्ठर पड़े थे। मंजू बैठी आखत के लिए गुच्छे बांध रही थी। गेहूं और जौ की नरम उण्ठलों को चोटी की तरह जिहार गूंथ रही थी।

तभी बाहर से बाबूजी की आवाज आई—

—बोल, होलिका माता की जै!

बाबूजी शादी-ब्याह वाले लोहे के छेद वाले हत्थे में बड़ी होलिका से अंगारे उठाकर लाए थे। रात तो ढल गई थी पर पौ अभी नहीं फूटी थी। उस हलके अंधियारे में अंगारे चमक रहे थे।

तब तक अम्मा ने घर में थापी छेददार उपलियों की मालाएं बना ली थी। बड़ी, फिर छोटी, फिर उससे छोटी और उन्हें एक-दूसरे पर रख कर जटा-जूट जैसा ढेर बना लिया था, बीच आंगन में।

होलिका की पूजा की थाली तैयार रखी थी। मंजू ने आखतों के गुच्छे गिन के सामने रख दिए थे। तभी बाबूजी ने प्रवीन से कहा—

—गन्ने के पातों का जटा-जूट उठा लाओ!

—कौन-सा? प्रवीन ने पूछा।

—वहां टांड पर रखा होगा! जहां सिरके का मटका रखा है! अम्मा ने कहा।

—पर कौन-सा? प्रवीन समझ नहीं पाया।

—वही जो शीतला छठ के दिन तोड़ा था!

शान्ता भी नहीं समझ पाई। उसे याद नहीं रहा…पांच होलियां तं बीत गई थीं, पर उसे ध्यान नहीं था कि शीतलामाता की जो पूजा मा की छठ को होती है उसमें गन्नों का मण्डप बनाते हैं बाबूजी। उनके पत्त को लपेट के मोरी गांठ बांध देते हैं और गन्नों को मण्डप की तरह फैल कर शीतलामाता की मूरत बीच में रखते हैं।

बड़े ज्ञान-ध्यान से शीतला माता की पूजा करते हैं बाबूजी…

माता की मूरत के सामने पानी का बड़ा घट रखते हैं…उसमें न का भौंरा रखते हैं। फिर अग्नि जला कर एक-एक गन्ने को लचा-ल कर अग्नि में गन्ने का रस निचोड़ते हैं—शीतलामाता के क्रोध को दा करने के लिए।

नहीं—उनका रोता और कभी-कभी बोलता हुआ नवीन था।

शान्ता ने अम्मा की तरफ देखा—उसे भी तो सिर्फ नवीन का ही इन्तज़ार था—

तभी हल्के गरम हवा के झोंके की तरह एक छाया आकर आंगन के बाहर वाले दरवाज़े पर रुक गई!

शान्ता ने अन्धेरे में ही पहचाना—

वह नवीन था!

—लालाजी आ गए! शान्ता एकदम चीख पड़ी थी।

गन्ने के सूखे पातों में से निकलती लपट से कुछ रोशनी-सी हुई—उसी रोशनी में शान्ता ने बड़े दरवाज़े पर छाया देखी और उसका मन एकाएक बोल पड़ा—

—लगता है लालाजी आए हैं!

और सचमुच वह नवीन ही था।

—बाबूजी प्रणाम···अम्मा प्रणाम···भइया प्रणाम···भाभी प्रणाम···अरे, कैसी है मंजू! कहते हुए नवीन ने सबके पैर छुए, मंजू और मुन्ना को प्यार किया···और सबको देखता हुआ खड़ा हो गया!

सुबह का अन्धेरा··· उठती लपट की रोशनी में दहकता हुआ···तांबे के आदमी की तरह चमकता हुआ नवीन ··वह सब को देखता खड़ा रह गया। सब उसे देखते रह गए···कोई कुछ बोल ही नहीं पाया···सब जैसे दूसरे के बोलने का इन्तज़ार कर रहे थे···एक-दूसरे को देखते हुए नवीन की तरफ बारी-बारी से देख रहे थे।

तभी अम्मा ने कहा—

—पांच साल से तेरी भाभी होली खेलने का अरमान लिए बैठी है···तुझे अब समय मिला!

नवीन ने सर झुका लिया।

गन्ने के पात लगभग जल गए थे। बाबूजी ने कहा—

—मंजू! ये लड़ियां उठा!

मंजू ने लड़ियां उठाई और घर की होलिका में अग्नि रख दी गई। पहले तो धूआं निकला फिर लपटों ने आग पकड़ ली।

—जल्दी-जल्दी आखत डाल लो। पूजा करते हुए अम्मा ने कहा। बाबूजी ने मुन्ना की उंगली पकड़ी, अम्मा ने मुन्नी को गोद में उठाया और घेरा बनाकर सब घूमने लगे—

होलिका माता की जै ! भक्त प्रह्लाद की जै···अन्न के दाने अग्नि में पड़ने लगे ! आखत डालते और अग्नि का घेरा लगाते शान्ता की नजर ऊंची दीवार में लगी खिड़की पर पड़ी थी। खिड़की बन्द थी, पर शान्ता ने अपनी ऊनी ओढ़नी खाट से उठा कर नवीन के सर पर डाल दी थी।

—यह क्या भाभी ! तुमने मुझे लड़की बना दिया।

—क्या पता, कब खिड़की खुल जाए !

अम्मा और बाबूजी ने उपकार की दृष्टि से बहू को देखा था। आखत पड़ गए तो बाबूजी ने उबटन का बोर सबको हाथों में मलने के लिए दिया था फिर वह पूनी उठा लाए थे, जो प्रवीन ने चरखे पर काती थी और कच्चे सूत की उस पूनी से सूत निकाल-निकालकर सबको नापा था और बराबर का डोरा तोड़-तोड़कर अग्नि को समर्पित कर दिया था।

—मनुष्य का जीवन इसी कच्चे डोरे की तरह है ! जितनी उम्र बीत गई, वह अग्नि को समर्पित है ! बाबूजी ने कहा।

—और बाकी उम्र अग्नि की तरह धधकने के लिए है ! मुन्ना का गाल थपथपाते हुए नवीन ने जोड़ दिया था—कच्चे सूत की तरह जल जाने के लिए नहीं !

प्रवीन ने नवीन के बालों में प्यार से हाथ फेरते हुए कहा था—इस कच्चे सूत मे कितनी ताकत है···यह तुम्हें नहीं मालूम···पगले !

शान्ता ने आज पहली बार दोनों भाइयों को साथ-साथ और इतने प्यार से एक-दूसरे को देखते हुए देखा था।

तभी मंजू नवीन का हाथ पकड़ के खींचने लगी—

—इधर आओ दादा···

—अम्मा···मैं सवेरे-सवेरे पौ फटते चला जाऊंगा ! नवीन ने कहा था।

—क्यों ? हमारे साथ होली नहीं खेलोगे ? शान्ता ने पूछा था।

—होली खेल के जाऊंगा भाभी !

— तू जाके थोड़ी देर आराम कर ले बहू ! अम्मा ने कहा—शाम से जाग रही है···

—हां भाभी···कहते हुए नवीन ने मंजू को आंखों-आंखों में ही इशारा किया था।

—भाभी तुम जाओ···

—अब नींद कहां आएगी !

कहती शान्ता मुन्ना को गोद में उठाए कमरे में चली गई।

और नवीन का हुड़दंग शुरू हुआ। बरोठे में रखे दिवाली के दिए और सकोरे उसने उठाए। मंजू ने लाके रंग की पुड़ियां दीं और सकोरे में गाढ़ा-गाढ़ा काला रंग घोल लिया गया।

अम्मा की पूजा में से कपास ले के, बढ़नी की तीलियों में लपेट-लपेट के फुरेरी बना ली गई।

—चाचा ! यह क्या है ? मुन्ना ने अचरज भरी आंखों से सब तैयारी देखते हुए पूछा।

—अभी बताता हूं। तू पहले देख के आ···तुम्हारी अम्मा सो गई ? नवीन ने मुन्ना को दौड़ाया।

मुन्ना भागता हुआ कमरे में गया···

—अम्मा ! अम्मा ! तुम सो गईं !

पीछे-पीछे आकर मंजू ने मुन्ना का मुंह दबा लिया। देखा—भाभी सो गईं थीं। उसने वहीं से नवीन को इशारा किया—आओ, आ जाओ।

नवीन अपना ताम-झाम लिए शैतान बच्चे की तरह शान्ता के कमरे में पहुंच गया। धीरे-से उसने रूई की फुरेरी को काले रंग में डुबोया और भाभी की नाक के पास हलके-से रखा···भाभी सो रही थी। नवीन ने आराम से भाभी के काली मूंछें बना दीं। मुन्ना मुंह दबा कर हंसा··· शान्ता थोड़ा कुनमुनाई, मुन्ना को थपथपाया उसने और सीधी होकर लेट गई।

—अब ठीक है ! कहते हुए नवीन ने उसके चेहरे पर दाढ़ी भी पूरी

नगाड़े की आवाज पूरी बस्ती पर तैर रही थी···रंग खेलने वालों की टोलियां आवाजें लगातीं, शोर मचातीं घूम रही थीं···जगह-जगह रात मे जली होलिका के अंगारे दहक रहे थे, राख उड़ रही थी और मोटे-मोटे गुद्दे सुलग रहे थे। नालियों मे हर घर से रंगीन पानी बहता हुआ आ रहा था। चबूतरे और दीवारें रंगों के झपाके से भर गई थीं··· गलियां गीली और अबीर-गुलाल से रंग गई थीं।

घर में गली के लोग भी आ गए थे···अब तो यह पहचानना भी मुश्किल था कि भाभी कौन थी और अम्मा कौन···नवीन को तो शान्ता ने रंग-रग के भूत बना दिया था···प्रवीन को भी कमरे में ले जाके शान्ता ने खूब रंगा था, घर भर लोगों से भरा हुआ था।

और इस हंगामे में किसी ने देखा ही नहीं था कि हवेली की खिड़की कब खुली और कब बन्द हुई थी। हवेली वालों ने और उनके चौरंगी ने कब यह सब देखा था··यह तो तब अन्दाज हुआ—जब नगाड़े की तैरती आवाज को तोड़ती फिरंगी बूटों की आवाज आंगन में आ गई थी।

—हाल्ट !

सब सहमे-से खड़े रह गए थे। सकता छा गया था।



—क्या बात है ! बाबूजी ने पूछा था।

मुन्ना सहम के दादी की धोती में छुप गया था।

—हमारे को नवीन मंगता ! फिरंगी बोला था।

—क्यों हमारा त्योहार खराब करते हैं ! नवीन यहां नहीं आया है।

—आया है ! कोई अपनी जगह से हटेगा नहीं ! फिरंगी इन्स्पैक्टर चीखा था। और उसने वहीं खड़े-खड़े सब पर निगाह डाली थी···एक-एक को गौर से देखा था। नीले-बैंजनी रंगों से पुते सब चेहरे एक से दिखाई दे रहे थे। इन्स्पैक्टर पसोपेश में पड़ गया था। उसने तेज नजरों से एक-

एक को पहचानने की कोशिश की थी। फिर आगे बढ़कर उसने एक बाह पकड ली थी।

—हमारे को धोखा देता है! इन्सपैक्टर चीखा था।

—मैं नवीन नहीं—प्रवीन हूं इन्सपैक्टर! प्रवीन ने कहा था।

सब काप के रह गए थे। शान्ता ने नवीन को अपने पीछे करने की कोशिश की थी।

—हम टुमारे को खुदा के घर से भी ढूढ के लाएगा! समझा···तुम साला नवीन है! इन्सपैक्टर चीखा—एं! औरत लोग! साफ पानी लाने को मांगता! साला···अबी हम टुमारा मुह धुलवाएगा। समझा! टुमारे को मुह धुलवा के तिनाख्त पूरा करेगा और हिया से सीधा फांसी का तख्ता पर ले जाएगा! साला डैकोइट! टेरोरिस्ट! ···पिण्डारी!

इन्सपैक्टर जैसे पागल-सा हो गया था। वह लगातार चीखता जा रहा था—

—टुम साला ये मूंछ चिपका लिया। समझा हम पहचान नहीं पाएगा! ···हूँ! ···एं! ···औरत लोग! क्या बोला टुमारे को···साफ पानी मंगता!

एकदम मौका पाकर शान्ता नवीन पर चीखी—

—ऐ बिरजू! सुनता नहीं···अंग्रेज बहादुर पानी मांगता है और तू अब भी खड़ा है! चल, जाके पानी ला! कहती और नवीन को नौकर की तरह डांटती शान्ता उसको रसोई की तरफ खदेड़ ले गई।

भीतर पहुंचते ही शान्ता ने फुसफुसाकर कहा—

—लाला! तुम निकल जाओ···देर न करो···

नवीन कुछ अचकचाया—

—कहीं भइया को कुछ हो गया तो···

—उन्हें कुछ नहीं होने दूंगी, तुम भाग जाओ, नहीं तो अनर्थ हो जाएगा···जाओ···

नवीन कुछ अटका, पर भाभी की हड़बड़ी देख के उसे कुछ बोलने का ज्यादा मौका ही नहीं मिला, वह पिछवाड़े वाले दरवाजे से, जो बरसों से टूटा पड़ा था, बाहर निकल कर गली में नाचती-गाती होली की टोली में

जा मिला।

शान्ता का जी धक्-धक् करता रहा''' टूटे दरवाजे के पास ही गिरी हुई दीवार का जो ऊबड़-खाबड़ चबूतरा बन गया था, उस पर खड़े होकर जब उसने नवीन को उस टोली में साथ जाने के बाद खुद नहीं पहचाना, तब चैन आया।

रसोई में रखी गंगाल का पानी उसने बाल्टी में डाला और शेरनी की तरह निकल पड़ी। उसने बाल्टी भर पानी लाकर फिरंगी इन्सपैक्टर के सामने पटक दिया।

लो ! फिरंगी बाबू।

हां ! इन्सपैक्टर ने आंखें तरेर कर शान्ता की ओर देखा, अभी तो उसने उसे अंग्रेज बहादुर कह के पुकारा था और अब फिरंगी बाबू पुकार रही थी। लेकिन इन्सपैक्टर को इस वक्त अपनी पड़ी थी इसलिए खून का घूंट पी कर प्रवीन को हुकुम दिया—मुंह साफ करने का ! गारद एलर्ट !

इन्सपैक्टर ने तब जेब से नवीन की एक तस्वीर निकाली थी, उसे देख कर रंग पुते प्रवीन को देखा था और जोर से हंसा था—ही'''ही जल्दी साफ करने का।

प्रवीन ने मुंह धोना शुरू किया।

इन्सपैक्टर पंछी की तरह सिर पलट-पलटकर तस्वीर, फिर प्रवीन को देखता जाता था और थोड़ा-सा रंग हटता था तो खुश हो जाता था। वह लगातार तस्वीर से मिलान कर रहा था। आखिर जब काफी रंग धुल गया और प्रवीन का चेहरा आधे से ज्यादा उजला हो कर पहचान में आने लगा, तब फिरंगी इन्स्पैक्टर के चेहरे का रंग मटमैला पड़ने लगा। उसकी कंजी आंखों से फूटती चिनगारियां बुझने लगीं'''अपनी गलती और हार से वह बौखलाने लगा'''आखिर पैर पटककर उसने गाली दी—साला !

और प्रवीन की मूंछों को नोचता हुआ चीखा—

—ऐई साला, ऐई मुस्टैच'''मूंछ हटाने का !

—तभी शेरनी की तरह शान्ता आगे आकर चीख पड़ी—

—ऐई फिरंगी बाबू ! मूंछों को हाथ मत लगाना···मैं तुम्हारा खून पी जाऊंगी···ये मेरे मरद की मूंछे हैं। कहते हुए उसने अंग्रेज इन्स्पैक्टर का हाथ झटक दिया था।

पूरा वातावरण इस भूडोल से कांप गया था।

इन्सपैक्टर उछता के पैर पटकता हुआ, दो कदम पीछे हट गया था। वह अपनी गलती और ज्यादती समझ गया था और अब समझ नहीं पा रहा था कि इस शेरनी की मांद में से कैसे निकलकर भागा जाए···उसने गारद की तरफ देखा।···गारद के सात-आठ सिपाही आंख चुरा रहे थे, पर घर और मुहल्ले वाले अब आंखों में आंखें डालकर एक-दूसरे को देख रहे थे।

तभी प्रवीन ने कुरते से अपना मुंह पोंछा था और शान्ता ने प्रवीन को अपनी बाहों मे पकडकर फिर अंग्रेज इन्सपैक्टर के सामने करते हुए तेज आवाज मे कहा था—

—लो, पहचानो ! पहचानो !

इन्सैक्टर अब एकदम पस्त हो गया था। रूमाल से मुह और गर्दन पर आया पसीना पोंछता हुआ बोला था—

—आई एम सारी हेडमास्टर ! आई एम सारी मैंडम !

—सारी बोल के तुमने हमारी सारी होली बरबाद कर दी ! शान्ता ने आग उगलते हुए कहा था।

इन्सैक्टर फिर भीतर-ही-भीतर धधका था। वह इस अपमान को सह नही पा रहा था। जब उसकी समझ मे कुछ नही आया तब उसने जलती आंखो से शान्ता को देखा, ओठ भीचे और प्रवीन से बोला—

—हेडमास्टर ! हमारे को कुछ पूछताछ करने का है···आप अबी हमारे साथ आएगा ! कहकर वह मुड़ा।

—चलिए ! प्रवीन ने कहा।

—ये कही नही जाएगे ! शान्ता ने आगे बढ कर प्रवीन को रोका —यह हमारा त्यौहार का दिन है। हम अपना त्यौहार मनाएगे···

इन्सैक्टर अपनी हेकडी मे फिर आ गया था। वह रुका, उसने प्रवीन को देखा, जैसे पूछ रहा हो—मेरा हुकुम मानोगे या नही !

—मुझसे बात करो ! शान्ता ने इन्स्पैक्टर से कहा—तुम्हारे देश में कुछ सिखाया जाता है कभी···अंग्रेज बहादुर ? गोला-बारूद, तमंचा-पिस्तौल के सिवा ?

इन्स्पैक्टर 'अंग्रेज बहादुर' सुन के थोड़ा ठण्डा पड़ा था, पर अनकचा रहा था।

जो लोग होली खेलने के लिए आए थे और गारद आने पर तमाशा देखने के लिए जमा हुए थे, वे धीरे-धीरे सरक रहे थे। दरवाज़े के पास और गली में फुसफुसा कर कह रहे थे—

—शेरनी है शेरनी ! दस हाथ का कलेजा है इस बहू का। कैसा मुकाबला किया फिरंगी का ! निडर औरत है···हम लोग को भी इतना डरना नहीं चाहिए···गोरी चमड़ी से !

यह सारी ख़बर आनन-फानन हवेली में भी पहुंच गई थी। हवेली वाली कच्चे तेल में पड़ी कचौड़ी की तरह तिलमिला के रह गई थीं, उन्होंने अपने मुसाहिब से कहा था—

—चौरंगी ! देख तो ज़रा !

चौरंगी ने खिड़की खोली थी और तीर की तरह शान्ता की नज़र वहां पहुंची थी। उसके मन में तो आया था, कहे—चौरंगी ! देख ले अपने फिरंगी को ! पर वह कुल की मर्यादा के कारण नहीं बोली थी···बहू को इतना ज्यादा बोलने का अधिकार नहीं होता। फिरंगी तो फिरंगी था, पर चौरंगी फिर भी हवेली वाली बड़ी सास का नौकर था, उससे लिहाज करना जरूरी था।

दीवार की खिड़की फौरन ही बन्द हो गई थी। पर जब-जब यह खिड़की खुलती थी, तब-तब शान्ता को लगता था जैसे उसकी छाती की पसलियों को उधेड़ कर कोई बार-बार पिंजरा खोल देता है···खिड़की बन्द हुई तो शान्ता ने प्रवीन की तरफ देखा—

—इनसे कह दो···आज आप नहीं जाएंगे।

—मैं कल चला आऊं इन्स्पैक्टर ?

—ठीक हय ! कल ! ठीक हय···कल दस बजे। इन्स्पैक्टर भी जैसे-तैसे इस उलझी हुई हालत से निकल जाना चाहता था, लेकिन वह भीतर-

ही-भीतर मरुड़ रहा था। जाते-जाते उसने जलती आंखों से सब को देखा था और खिसियाया हुआ बाहर चला गया था। पीछे-पीछे गारद भी चली गई थी।



दूसरे दिन सुबह दस बजे प्रवीन थाने की तरफ चलने लगा तो बाबूजी भी तैयार हो गए।

—आप क्या करेंगे, चलकर? मैं हो आता हूं! प्रवीन ने कहा था।

—नहीं···मैं चलता हूं!

बाबूजी और प्रवीन थाने की तरफ चले तो उनमें कल का साहस भरा हुआ था। ठीक है, जो पूछताछ करनी हो, कर ले, और क्या करेगा? देखा जाएगा, जो होगा।

दोनों को ही धड़का नहीं था।

बस्ती में यह खबर आग की तरह फैल गई थी कि कल नवीन को पकड़ने के लिए अंग्रेजी गारद उसके मकान पर गई थी और आज हेडमास्टर प्रवीन को पूछताछ के लिए बुलाया गया है। तरह-तरह की बातें थीं। बाबूजी और प्रवीन जब थाने वाले रास्ते की तरफ मुड़े थे तो बजरिया में ही मिर्ज़ा साहब उन्हें मिले थे।

—अब तो फिरंगियों की ज्यादतियां हद से बढ़ती जा रही हैं! वक्त रहते कुछ नहीं किया गया तो हमारी जिन्दगी जानवर से बदतर हो जाएगी।

प्रवीन ने गौर से मिर्ज़ा साहब को देखा, उनके चेहरे पर तीखा खिंचाव था, पर वह तो एक ही रास्ता सुझा सकता था—हिंसा से कुछ नहीं होगा। हिंसा से हिंसा बढ़ेगी और जुल्म भी बढ़ते जाएंगे···हमें शान्ति और असहयोग से काम लेना पड़ेगा···

—तो असहयोग शुरू करो! बुलाया है तो जाने से इन्कार करो! मिर्ज़ा साहब ने प्रवीन से कहा।

—नहीं···असहयोग का मतलब इनकार नहीं है ··हर बात से इनकार करना असहयोग का मकसद नहीं है। सहयोग करो, पर जहां सत्य न हो, उसे स्वीकार मत करो···यह असहयोग होता है। प्रवीन ने कहा।

—और सहयोग करते हुए जो जुल्म ढाए जाएं, उन्हें बर्दाश्त करते जाओ? क्यों? मिर्ज़ा साहब ने तुरशी से कहा—यह तरीका हमारी समझ में नहीं आता! खैर···देख आओ···

दोनों थाने पहुंचे तो इन्स्पेक्टर ने बाबूजी को बाहर बिठा दिया, प्रवीन को लेकर भीतर चला गया।

कुछ देर तो कोई आवाज नहीं आई—पर बाबूजी के कान तब खड़े हुए जब ऊंची आवाज में इन्स्पेक्टर की कुछ गालियां सुनाई पड़ीं···फिर कुछ बहस की आवाज आई और मारपीट की। बाबूजी उतावले-से घूमने लगे···उन्होंने इधर-उधर झांकने की कोशिश भी की, पर कुछ देख नहीं पाए। परेशानी बढ़ती गई···लेकिन कोई चारा नहीं था।

तभी एक हवलदार निकला, बाबूजी ने उससे कुछ जानना चाहा, पर वह चुपचाप दूसरे कमरे में चला गया और वापस लौटा तो उसके हाथ में एक बाल्टी थी, जिसमें भीगते हुए बेंत थे। बाबूजी सिहर उठे।

और एक पल बाद भीतर से अत्याचार की आवाजें आने लगीं—प्रवीन का कराहना भी सुनाई पड़ा। बाबूजी से नहीं रुका गया। वे दरवाजा पार करते धड़धड़ाते भीतर घुस गए। सामने बड़ा दर्दनाक दृश्य था—

इन्स्पेक्टर बारूद की तरह धमक रहा था। एक हवलदार हाथ में भीगा बेंत लिए सटाक्-सटाक् मार रहा था और करवटें बदलता प्रवीन चीखता हुआ कराह रहा था। एक और सन्तरी हाथ में चिमटी लिए प्रवीन के नाखूनों को खींचता था तो वह दर्द से बुरी तरह चीखता था। नाखून खींचने वाला इन्स्पेक्टर के पलकों की झपक देखकर चिमटी चलाता था और बेंत मारने वाला उसके पैरों की थाप पर मारता था। जैसे उस छोटे-से कमरे में एक मशीन चल रही थी—उसी तरह की मशीन-जैसी मशीनें अंग्रेज लाए थे···जिसके पुर्जे उनमें से कोई अकेला खुद नहीं चला सकता था—एक-दूसरे की गड़ारी में अटके हुए चलते थे···सिवा उसके, जो मशीन चलाता था!

बाबूजी चीखे थे—

—यह क्या कर रहे हो तुम ?

चटाक् ! एक झापड़ बाबूजी के पड़ा था और इन्स्पेक्टर चीखा था—तुम साला बागी लोग ! पिण्डारी लोग ! हमारे को···हमारी सल्तनत को, हुकूमते-बर्त्तानिया को बेइज्जत करेगा ! अपन् घर में ! सबी के सामने हम लोगों का मखौल करेगा ! हम टुमारा चमड़ी उधेड़ के रख देगा···और टुमारा बहू को इदर लाके हवालात में सीधू करेगा ! उस साली औरत ने नवीन को तड़ीपार किया···हमारे को चकमा दिया··· बर्त्तानिया सरकार को ! हम टुमारी औरत लोग को भी नहीं छोड़ेंगा··· उसी को बताएगा ··फिरंगी क्या होता ! समझा ?

कहता और बार-बार मारता हुआ इन्स्पेक्टर बाबूजी को बाहर घसीट लाया था और एक सन्तरी के हवाले करके चीखा था—

—इसी को इदर बांध के रखो।

और गालियां बकता हुआ फिर भीतर लौट गया था।

बाबूजी बेबस हो गए थे।

भीतर मारतोड़ और बढ़ गई थी।

इन्स्पेक्टर ने प्रवीन को सता-सताकर धमकाया था···बार-बार नवीन का पता पूछा था। जगह-कुजगह मारा था। मिर्चों की बुकनी घोलकर टांगों के बीच में डाल दी थी ··

और इससे पहले कि मिर्जा साहब कानूनी मदद ले के बात करने आए कि आप किस इल्जाम और जुल्म के बदले में प्रवीन को गिरफ्तार करके मार रहे हैं—प्रवीन मार खाकर, बुकनी की जलती सलाख से तिलमिला-कर और बीवी-बच्चों पर आने वाली आपदा से डरकर सब-कुछ उगल चुका था।

प्रवीन ने क्रान्तिकारियों के अड्डे के बारे में अटक-अटककर सब कुछ बता दिया था—जो भी उसे पता था। इन्स्पेक्टर ने क्लर्क को बुलाकर कहा था—

—जमदोद ! सभी कुछ साफ-साफ पूछ के नोट करो और हमारे को दो !

जमशेद ने एक कागज पर वह सब नोट किया था जो प्रवीन ने बताया था और अंग्रेज इन्स्पैक्टर को पकड़ा दिया था। कागज अपनी तमगों वाली जेब के हवाले करते हुए इन्स्पैक्टर ने अधमरे प्रवीन को उठाया था और बाबूजी तथा मिर्जा साहब के साथ बैठे हुए मंगूलाल मुख्तार के सामने पटक दिया था।

थाने के सामने भीड़ जमा हो गई थी—उस भीड़ को भगाता हुआ जमशेद न जाने कहां चला गया था।



क्रान्तिकारियों के अड्डे में खलबली मच गई थी—जमशेद सब कुछ बताकर जाने की जल्दी में था। अड्डे को खाली करते-करते क्रान्तिकारी-अदालत में बहस भी जारी थी—

—प्रवीन ने हमारे साथ दगा किया है! और दगा हम बर्दाश्त नहीं करेंगे!

—नहीं! मेरा भाई मुखबिरी नहीं कर सकता! वह देशद्रोही नहीं हो सकता! सामान बांधते हुए नवीन चीखा था।

—तुम्हारा भाई देशद्रोही है!

—मुझे सच्चाई पता लगाने दो! तुम लोग चलो…मैं जमशेद के साथ जाता हूं!

कहकर नवीन भी निकल गया था।



उस वक्त रात थी।

शान्ता प्रवीन का बदन सहलाते हुए और पछताते हुए उससे पूछ रही थी।

—लानत है तुम पर ! शान्ता ने धुएं-भरी आवाज़ में फुसफुसाकर कहा था।

—यह तुम अपने पति से कह रही हो ? प्रवीन ने गुस्से से थरथराते हुए उसे झकझोरकर कहा था।

शान्ता कुछ नहीं बोली थी। अब उसकी आंखों में जमा हुआ मोम भी नहीं था। वह भी भीतर समा गया था।

और सारी दिशाएं अपनी कीली पर घूम गई थीं।

अब न पूरब की तरफ पूरब रह गया था, न उत्तर की तरफ उत्तर ! न छतें छतें रह गई थीं, न सीढ़ियां सीढ़ियां···सुबह जब शान्ता ने कुएं से पानी निकाला तो वह लावे की तरह खौलता हुआ निकला था। उसे अब पूरा घर अजीब-सा लगता था—जैसे हर दीवार में छेद हो गए हों··· उसके घर के हर कमरे की छतें उड़ गई हों···आसमान मीलों ऊपर चला गया हो। धरती कोसों नीचे धसक गई हो···सूरज बरफ का गोला बन गया हो···आकाश में उड़ती चिड़ियां तीरों की तरह चल रही हों ! पेड़ों के तने फट गए हों, पत्तियां मुरझा गई हों।

शान्ता रह-रहके सोच रही थी—

क्या यह उसका वही घर है ? वही घर···जिसके लिए वह अचरज में पड़ी सोचती रह गई थी—

···यह सब कैसे एक ही दिन में अपना हो गया ? पराया तो कुछ भी नहीं रह गया ! उस दिन, जिस दिन उसका अपना वंश बदला था। जब कुआं अपना लगा था···तब इसमें जीवन देने वाला पानी भरा था, लावा नहीं। जब ईंटें अपनी लगी थीं, मण्डप में चढ़ाई गई मिठाई के आस-पास घूमते चींटे अपने लगे थे···गोबर से लिपा मण्डप और बांस की नचीली टंगाल अपनी लगी थी। महावर लगा जोड़ा अपना लगा था। जब उसका शरीर फूल की तरह खिलने लगा था।···मेथी-आलू और पूड़ियां महकती थीं, चाबियों के गुच्छे झनकते थे। हवेली का फाटक और मसाला था। टांड पर रखा सिरके का घड़ा भी अपनी भाषा में बोलता रहता था···बिसाती और मनिहार आवाज़ें लगाते रहते थे···और···और वह सब···जब शान्ता को गुड़िया की तरह सजाया गया था··· जब मुन्ना

—लेकिन क्या···

—···देश के लिए कलंक हो ! शान्ता ने कह ही दिया था।

सुनकर प्रवीन बेहद तिलमिला गया था···उसका पोर-पोर दर्द करने और चीखने लगा था···सह नहीं पाया तो उसने एक तमाचा शान्ता को मार दिया था और चीखा था—

—तुम्हें देश की चिन्ताएं कब से सताने लगीं ! तुम्हें क्या लेना-देना है इन बातों से ? तुम अपने बच्चे देखो, घर देखो···और आराम से पड़ी रहो।

—तो तुमने मुझे माटी की मूरत बना दिया !

—जो हो···वही बन के रहो !

—मैं जो हूं···वही बनके रहूंगी ! शान्ता ने बड़े विश्वास से कहा था ··और एकाएक उसके भीतर दो-दो सांसें आने-जाने लगी थीं···एक उसकी अपनी थी, एक बड़ी दादी की···वे सामने लेटी थीं—

बड़ी दादी ने उसे पुकारा था—

—सन्तो बेटा सुन !

—हां बड़ी दादी !

बड़ी दादी ने कहा था—

—देख बेटा ! अब हम तो कभी चली जाएंगी, पर अपने घर-परिवार का कुछ नेम होता है···मेरी इन आंखों में एक सपना कौंधता है—तेरे बड़े मामा की मर्जाद रखने वाला अब कोई नाहीं है ! अपने बड़े बाबा को याद रखना बेटा और उनकी मर्जाद की रक्षा करना···बस बेटा···

बड़ी दादी के मुंह में उसने गंगाजल और तुलसीदल डाला था···पुजारीजी टोकते ही रह गए थे···और बड़ी दादी कह रही थीं—

—महाराज ! तुम्हें नाहीं मालूम ! हमारी असली मुक्ति कहां है···हमारी मुक्ति सुरग-नरक में नाहीं है···वह इसी धरती पर है ! ···

शान्ता ने आंखें बन्द करके दादी को दूसरी बार विदा किया था। वह उठना ही चाहती थी कि प्रवीन फिर धधका था···वह भूल ही नहीं पा

रहा था कि शान्ता ने उसे 'कलंक' कहा था। रह-रहकर वह तिलमिला उठता था, चाहता था—शान्ता को अच्छी तरह अपमानित करे और उससे यह शब्द वापस लेने को कहे···उसके भीतर का पति कुचले हुए सांप की तरह फुफकार रहा था।

—मुझे तुमसे कुछ बातें करनी पड़ेंगी! प्रवीन के भीतर बैठा पति बोला था।

—करना! शान्ता ने अपने पति को जवाब दे दिया।

प्रवीन और तिलमिला उठा—यह कैसी औरत है, जो बातों को इतनी आसानी से टाल रही है···

तभी एक धमाका हुआ।

अम्माजी न जाने किस पर चीख पड़ीं—तू चला जा यहां से।

—नहीं···यह नहीं जाएगा! यह आवाज बाबूजी की थी—यह मरेगा, मेरे सामने मरेगा!

—नहीं! इसका इस घर से अब कोई लेना-देना नहीं है! मुझे इससे कोई सम्बन्ध नहीं रखना है!

—यह तुम्हारा न सही···मेरा बेटा है!

शान्ता ने दौड़कर आंगन में देखा था।

नवीन खड़ा था।

अम्मा और बाबूजी में नवीन को लेकर झगड़ा हो रहा था।

—मैं सिरफ भइया को देखने और उनसे बात करने आया हूं! नवीन ने कहा।

—वह तुमसे कोई बात नहीं करना चाहेगा! अम्माजी ने कहा।

—मुझे बात करनी है! मंजू···भइया कहां हैं? मेरे पास एक पल का भी समय नहीं है···पुलिस को पता है···मैं आया हूं! लेकिन मेरी मौत से ज्यादा इस वक्त कीमत भइया की ईमानदारी को साबित करने की है।

तब तक मंजू कमरे से लौट आई।

—कहां हैं भइया? नवीन ने मंजू से पूछा।

—वो कहते हैं···हमें बात नहीं करनी है! मंजू ने सर झुकाकर

—लेकिन क्या···

—···देश के लिए कलंक हो! शान्ता ने कह ही दिया था।

सुनकर प्रवीन बेहद तिलमिला गया था···उसका पोर-पोर दर्द करने और चीखने लगा था···सह नहीं पाया तो उसने एक तमाचा शान्ता को मार दिया था और चीखा था—

—तुम्हें देश की चिन्ताएं कब से सताने लगीं! तुम्हें क्या लेना-देना है इन बातों से? तुम अपने बच्चे देखो, घर देखो···और आराम से पड़ी रहो।

—तो तुमने मुझे माटी की मूरत बना दिया!

—जो हो···वही बन के रहो!

—मैं जो हूं···वही बनके रहूंगी! शान्ता ने बड़े विश्वास से कहा था··और एकाएक उसके भीतर दो-दो सांसें आने-जाने लगी थीं···एक उसकी अपनी थी, एक बड़ी दादी की···वे सामने लेटी थीं—

बड़ी दादी ने उसे पुकारा था—

—सन्तो बेटा सुन!

—हां बड़ी दादी!

बड़ी दादी ने कहा था—

—देख बेटा! अब हम तो कभी चली जाएंगी, पर अपने घर-परिवार का कुछ नेम होता है···मेरी इन आंखों में एक सपना कौंधता है—तेरे बड़े मामा की मर्जाद रखने वाला अब कोई नाहीं है! अपने बड़े बाबा को याद रखना बेटा और उनकी मर्जाद की रक्षा करना···बस बेटा···

बड़ी दादी के मुंह में उसने गंगाजल और तुलसीदल डाला था···पुजारीजी टोकते ही रह गए थे···और बड़ी दादी कह रही थीं—

—महाराज! तुम्हें नाहीं मालूम! हमारी असली मुक्ति कहां है···हमारी मुक्ति सुरग-नरक में नाहीं है···वह इसी धरती पर है!···

शान्ता ने आंखें बन्द करके दादी को दूसरी बार विदा किया था। वह उठना ही चाहती थी कि प्रवीन फिर भभका था···वह भूल ही नहीं पा

रहा था कि शान्ता ने उसे 'कलंक' कहा था। रह-रहकर वह तिलमिला उठता था, चाहता था—शान्ता को अच्छी तरह अपमानित करे और उससे यह शब्द वापस लेने को कहे···उसके भीतर का पति कुचले हुए सांप की तरह फुफकार रहा था।

—मुझे तुमसे कुछ बातें करनी पड़ेंगी! प्रवीन के भीतर बैठा पति बोला था।

—करना! शान्ता ने अपने पति को जवाब दे दिया।

प्रवीन और तिलमिला उठा—यह कैसी औरत है, जो बातों को इतनी आसानी से टाल रही है···

तभी एक धमाका हुआ।

अम्माजी न जाने किस पर चीख पड़ीं—तू चला जा यहां से।

—नहीं···यह नहीं जाएगा! यह आवाज बाबूजी की थी—यह मरेगा, मेरे सामने मरेगा!

—नहीं! इसका इस घर से अब कोई लेना-देना नहीं है! मुझे इससे कोई सम्बन्ध नहीं रखना है!

—यह तुम्हारा न सही···मेरा बेटा है!

शान्ता ने दौड़कर आंगन में देखा था।

नवीन खड़ा था।

अम्मा और बाबूजी में नवीन को लेकर झगड़ा हो रहा था।

—मैं सिरफ भइया को देखने और उनसे बात करने आया हूं! नवीन ने कहा।

—वह तुमसे कोई बात नहीं करना चाहेगा! अम्माजी ने कहा।

—मुझे बात करनी है! मंजू···भइया कहां हैं? मेरे पास एक पल का भी समय नहीं है···पुलिस को पता है···मैं आया हूं! लेकिन मेरी मौत से ज्यादा इस वक्त कीमत भइया की ईमानदारी को साबित करने की है।

तब तक मंजू कमरे से लौट आई।

—कहां हैं भइया? नवीन ने मंजू से पूछा।

—वो कहते हैं···हमें बात नहीं करनी है! मंजू ने सर झुकाकर

कहा।

शान्ता ने बिजली की तरह कौंध के कहा—

—लालाजी ! तुम किस मोह में पड़े हो ! खतरा मत उठाओ··· भाग जाओ !

—यह अब कहीं नहीं भाग सकता ! कड़कती आवाज आई थी। यह आवाज पुलिस की थी।

पलक झपकते ही शान्ता ने नवीन का हाथ पकड़ा था और वह उसे लेकर ऊपर छत पर भागी थी।

ऊपर छत वाले कमरे में नवीन को बन्द करके शान्ता ने दरवाजा बन्द कर लिया था। पुलिस ऊपर पहुंच गई थी।

इन्सपैक्टर चीखा था—

—नवीन को हमारे हवाले कर दो।

—नहीं ! खिड़की की छड़ें पकड़े शान्ता ने गरजायी आवाज में जवाब दिया था।

नवीन ने दीवार की ओर से भाभी को रोकते हुए कहा था।

—भाभी···अब रहने दो···कोई फायदा नहीं है।

—तुम चुप रहो लालाजी !

—वह गोली चला देगा···

—चलाने दो !

इन्स्पैक्टर चीखा—

—हम क्या बोला ?

—हमने सुना !

—हमारे को जिन्दा नवीन मंगता···नहीं तो···

—नहीं तो क्या करोगे ?

—गोली चलाएंगा !

—चलाओ···

—भाभी।

—तुम चुप रहो लालाजी···

इन्स्पैक्टर गारद पर चीखा—

—दरवाजा तोड़ के पकड़ो दोनों को ! जिन्दा मंगता !

हिन्दुस्तानी सिपाही सामने बढ़ने लगे···दरवाजा तोड़ने को। शान्ता जैसे बेबस होने लगी। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

कमरे के दरवाजे पर बन्दूकों के कुन्दों की चोटें पड़ने लगीं···

सब कुछ न समझकर हड़बड़ी में शान्ता ने अपनी धोती खोली थी और खिड़की से बाहर फेंकती हुई हिन्दुस्तानी सिपाहियों पर चीखी थी—

—शरम करो···तुम तो हिन्दुस्तानी हो ! तुम्हारी आंखों में तो अपनी बहनों-माओं के लिए कुछ इज्जत होगी···

इन्स्पैक्टर चीखा—

—आगे बढ़ो···तोड़ो।

शान्ता चीखी—

—तुम हिन्दुस्तानी होकर फिरंगी की चाल चलने लगे !

दरवाजे पर चोटें बढ़ गई थीं।

शान्ता फिर चीखी थी—

—ठीक है ! तोड़ दो दरवाजा···पर सोच लो···मेरे तन पर एक भी कपड़ा नहीं होगा···देख पाओगे अपनी बहन को नंगा !

नवीन अपनी आंखों पर हाथ रख के बैठ गया था और चीखा था—

—भाभी ! यह मत करो !

शान्ता दुर्गा बनी हुई थी, वह नवीन पर चीखी थी—

—चुप रहो ! मैं औरत नहीं···तुम्हारी भाभी, मां हूं लालाजी ! ···मां अपने बेटे को इस तरह नहीं दे देगी ! फिर सिपाहियों पर बिगड़ी थी—

—लो···आओ· 'तोड़ दो दरवाजा ! कहते हुए उसने अपनी फतुई उतारनी शुरू की थी···

हिन्दुस्तानी सिपाहियों की आंखें एक-दूसरे से मिली थीं—उनके जन्मों के सस्कार जागे थे और वे बन्दूकें फेंककर खड़े हो गए थे, सिर झुकाए।

इन्स्पैक्टर चीखा था—

—तोड़ो दरवाजा !

—हम नहीं तोड़ेंगे ! एक हवलदार ने चीखकर कहा था। और सब पलट पड़े थे।

इन्स्पैक्टर ने पिस्तौल निकालकर अपने सिपाहियों के सामने तान दी थी।

उसी समय गोली चलने की एक गूंजती आवाज़ आई थी—

नवीन की पिस्तौल से गोली चली थी और अंग्रेज इन्स्पैक्टर की लाश वहीं छत पर गिर पड़ी थी।

बाबूजी ने देखा था और कहा था, बुदबुदाते हुए—

—यह वह नहीं ! एक और बड़ी दादी पैदा हुई है !